ISSN (p) : 2394-3912
ISSN (e) : 2395-9369

त्रैमासिक 13(4) अक्टूबर-दिसम्बर, 2026
Technical articles are peer reviewed

www.kahaar.in

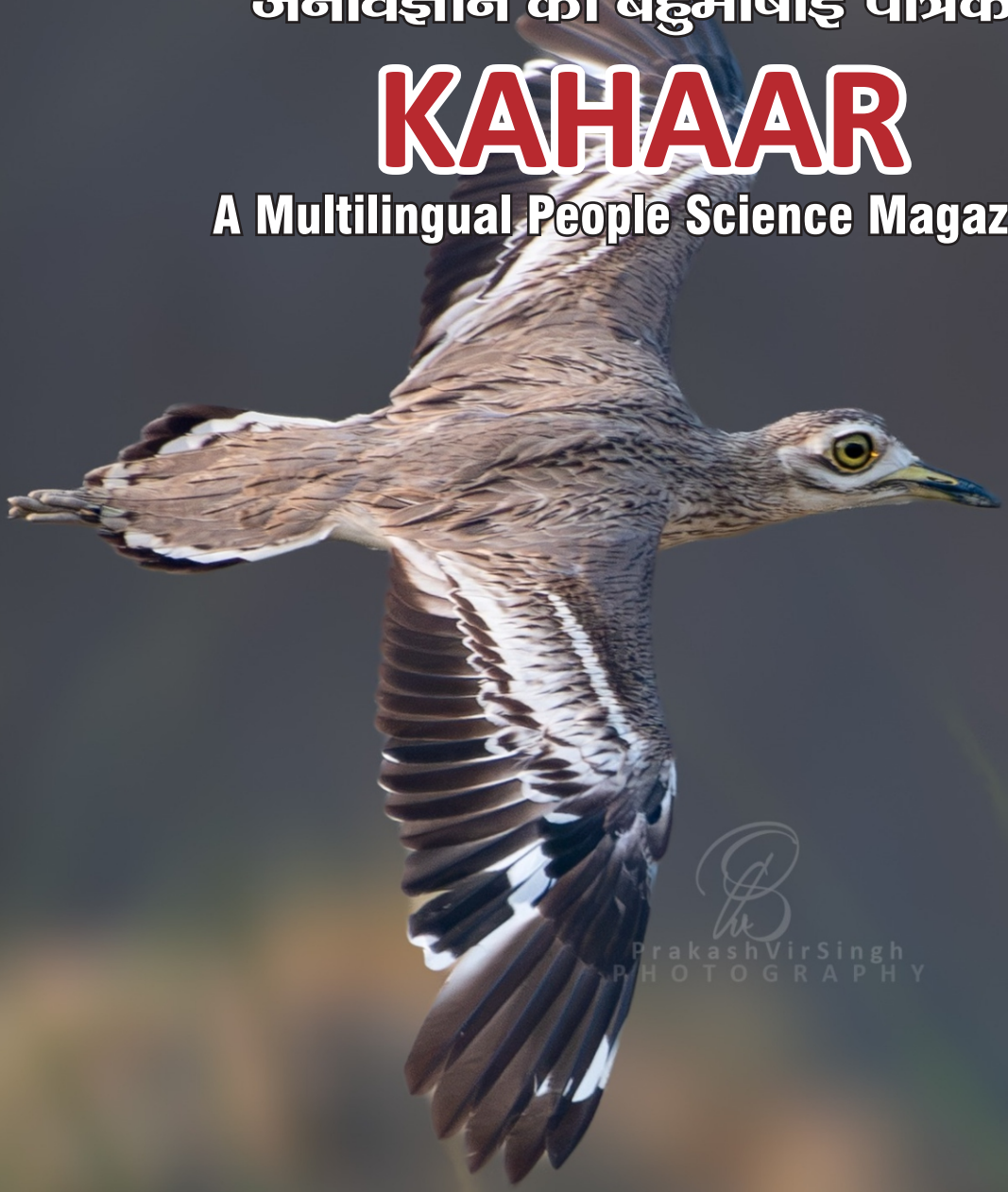
कहार

विशेष खण्ड:
कृषि पर्यावरण

जनविज्ञान की बहुभाषाई पत्रिका

KAHAAR

A Multilingual People Science Magazine



प्रकाशक
प्रोफेसर एच.एस. श्रीवास्तव फाउण्डेशन फॉर साइंस एण्ड सोसाइटी, लखनऊ
(www.phssfoundation.org)
सह-प्रकाशक
पृथ्वीपुर अभ्युदय समिति, लखनऊ (www.prithvipur.org)

PROF. H. S. SRIVASTVA FOUNDATION FOR SCIENCE & SOCIETY

Office No. 04, 1st Floor, Eldeco Xpress Plaza,
Uttrathia Raebareli Road, Lucknow
Website : : www.phssfoundation.org Email:phssoffice@gmail.com

Professor H. S. Srivastava Foundation for Science and Society is a national academic, non-profit voluntary organization registered under the society Act 1860, in Lucknow.

Announcement of Eight PHSS Foundation Awards for Year 2026-27

Nominations are invited by PHSS Foundation for following PHSS Foundation Awards (2026-2027)

1. **PHSS Foundation Life Time Achievement Award**
   Eligibility: Any distinct achiever in any field of science and society of Indian origin.
2. **PHSS Foundation Award For Social Contribution**
   Eligibility: Outstanding contribution in socio-economic upliftment, women empowerment or water conservation impacting a large number of the population.
3. **PHSS Foundation Award For Science Communication**
   Eligibility: Outstanding contribution in science communication including by writing, performing arts or science journalism impacting a large number of the population.
4. **PHSS Foundation Woman Leadership Award**
   Eligibility: Outstanding contribution by women in any field which indicate her leadership and impacts on a large population.
5. **Dr. P.K. Seth Memorial Award for Ecology and Environment**
   Eligibility: Outstanding contributions in research or management in the field of Ecology and Environment.
6. **PHSS Foundation Award for Commercialization of Technology**
   Eligibility: Outstanding contribution in Commercialization of Science & Technology by the researcher.
7. **PHSS Foundation Young Scientist Awards**
   (a) Physical Sciences & Engineering:
   (b) Life Sciences, Environmental Sciences & Agriculture
   Eligibility: Excellent contribution in the field of knowledge by a scientist up to age of 35 years

AGE LIMIT & ELIGIBILITY (AS ON 15-11-2026) FOR THE AWARDS

Awards can be given to a Person of Indian nationality, a person of Indian origin and an overseas citizen of India. However, it is desired that the major work have been done in India

1. *No age bar for Award no. 1 to 6. The Awardees will be honoured with citation, medal, angvastra and honorary Life Membership of the Foundation.*
2. *The Award at Sl.No. 07 will be conferred with citation, medal, honorary Life Membership of the Foundation and a cash of Rs. 15,000/=.*

Note: *Those who have been nominated for any Award within the last 03 years will be eligible unless the completion of three years after their nomination. They are invited to submit their updates, if any for consideration of the Selection-cum-search committee within three years.*

NOMINATION PROCEDURE

The Vice-Chancellor of Universities, Dean of faculties, Director of Institutes, Principal of the Higher Education Institutions, Professors, Head of Departments/Division, Principal Scientists or equivalent, Senior Government Officers, President/Chairpersons, Secretaries and Directors of Non-Government Organizations and the Professional Societies etc. can nominate a suitable person for any award. Selection cum Search Committee can also nominate a person of eminence for any Award, even he/she has not been nominated in response to the advertisement. The nomination form for these Awards can be downloaded from the Society's website: www.phssfoundation.org or can be obtained from the Foundation Office. Award nomination form along with copy of the supporting documents should reach to the following address before 15th November,

Prof. Rana Pratap Singh, General Secretary
Prof. H.S. Srivastava Foundation for Science and Society
Office No 04, Ist Floor, Eldeco Express Plaza, Uttarathia, Rae Bareli Road, Lucknow – 226025, UP India
Email: - phssoffice@gmail.com

Technical articles are peer reviewed

www.kahaar.in

कहार

जनविज्ञान की बहुभाषाई पत्रिका

त्रैमासिक, 13(4) अक्टूबर–दिसम्बर, 2026

A Multilingual People Science Magazine

प्रधान संपादक
प्रोफेसर राणा प्रताप सिंह, लखनऊ

अतिथि सम्पादक
डॉ. रूद्र प्रताप सिंह, कुमारगंज, अयोध्या

कार्यकारी सम्पादक
श्री कृष्णानन्द सिंह, लखनऊ

सह–सम्पादक
डॉ. बसंत माहेश्वरी, पेनरिथ, ऑस्ट्रेलिया
डॉ. निहारिका शंकर, नोएडा
डॉ. अर्चना सिंह, ब्रैनफोर्ड, यूएसए
श्री आकाश वर्मा, लखनऊ
श्री सुनीत कुमार यादव, मऊ
श्री शुभम अभिषेक, धनबाद
श्री पवन कुमार, लखनऊ

सम्पादक मण्डल
प्रोफेसर सुनीता मिश्रा, लखनऊ
प्रोफेसर राकेश सिंह सेंगर, मेरठ
श्री नरसिंह, देवरिया
श्री हरीशचन्द्र दहिया, गुडगाँव
डॉ. संजय सिंह, झांसी
श्री अनिल जैन, नई दिल्ली
श्री अनिल सिंह, लखनऊ
डॉ. मनोज गर्ग, लखनऊ
डॉ. पीयूष गोयल, नई दिल्ली
श्री मेराज उद्दीन सिद्दीकी, लखनऊ
डॉ. अनुज कुमार सक्सेना, सीतापुर

सलाहकार मण्डल
प्रोफेसर सरोज कान्त बारिक, शिलांग
डॉ. प्रफुल्ल वी. साने, जलगाँव, महाराष्ट्र
डॉ. राम सनेही द्विवेदी, लखनऊ
डॉ. राजेन्दर सिंह जलपुरुष, भीखमपुरा, राजस्थान
डॉ. वेदप्रकाश पाण्डेय, बालापार, गोरखपुर
डॉ. रूद्रदेव त्रिपाठी, लखनऊ
प्रोफेसर एन. रघुराम, दिल्ली
प्रोफेसर योगेश शर्मा, लखनऊ
डॉ. सी. एम. नौटियाल, लखनऊ
डॉ. शक्ति के. प्रभुजी, गोरखपुर
डॉ. सुमन कुमार सिन्हा, गोरखपुर
प्रोफेसर भरतराज सिंह, लखनऊ
डॉ. धीरज कुमार सिंह, नोएडा
प्रोफेसर रणवीर दहिया, रोहतक
डॉ. सुधाकर तिवारी, कुशीनगर
डॉ. मनोज कुमार पटैरिया, नई दिल्ली
डॉ. सिराज वजीह, गोरखपुर
प्रोफेसर मालविका श्रीवास्तव, गोरखपुर
इं. तरूण सेंगर, कारमेल, यूएसए
श्रीमती मधु करमेल, यूएसए
श्री उपेन्द्र प्रताप राव, दुदही
श्री अविनाश जैसवाल, दुदही
डॉ. मनीष सेंगर, रोहतक
डॉ. पूनम अहलावत, चण्डीगढ़

आवरण फोटो
श्री प्रकाशवीर सिंह, लखनऊ

प्रबंध–संपादक
श्री अंचल जैन, लखनऊ

सोशल मीडिया
श्री रणजीत शर्मा, लखनऊ
श्री योगेन्द्र प्रताप सिंह, लखनऊ

टाइप सेटिंग और प्रोडक्शन
श्री जावेद अहमद, लखनऊ

घोषणा

लेखक के विचार से कहार टीम का सहमत होना जरूरी नहीं हैं। किसी रचना में उल्लेखित तथ्यात्मक भूल के लिए 'कहार' की टीम जिम्मेदार नहीं होगी।

कार्यालय : 04, पहली मंज़िल, एल्डिको एक्सप्रेस प्लाजा, शहीद पथ, उतरेठिया, रायबरेली रोड, लखनऊ–226 025, भारत
ईमेलः kahaarmagazine@gmail.com/
dr.ranapratap.59@gmail.com

सदस्यता / Subscription* (Print Copy)

एक प्रति रुपये 250/– वार्षिक (4 प्रति) रुपये 1000/–
वार्षिक (10 प्रति) रुपये 9000/– (100 प्रति) रुपये 22000/–
**(डाक व्यय सम्मिलित)*

विज्ञापन (Advertisements)

Rs. 10,000/- Full Page (B/W) Rs. 6,000/- Half Page (B/W)
Rs. 15,000/- Full Page (Color) Back Cover

सहयोग राशि 'प्रोफेसर एच..एस. श्रीवास्तव फाउण्डेशन फॉर साइंस एण्ड सोसायटी : लखनऊ (Prof. H.S. Srivastava Foundation for Science and Society, Lucknow) के नाम भेजे।

खाता संख्या 2900101002506, केनरा बैंक, बी.बी.ए., विश्वविद्यालय, लखनऊ IFSC: CNRB0002900

लेखकों के लिए

वैचारिक रचनाओं में आवश्यक संदर्भ भी दें, एवम् इन संदर्भों का विस्तार रचना के अंत में प्रस्तुत करें। अंग्रेजी रचनाओं का हिन्दी तथा हिन्दी सहित अन्य भाषाओं की रचनाओं का अंग्रेजी या हिन्दी में सारांश दें। मौलिक रचनाओं के साथ रचना के स्वलिखित, मौलिक एवम् अप्रकाशित होने का प्रमाण पत्र दें। लेखक पासपोर्ट साइज फोटो भी भेजें। रचनाएँ English के Times New Roman (12 Point) और हिन्दी में मंगल / यूनिकोड में कन्वर्ट कर के भेजें। फोटो या रेखाचित्र अलग से और चित्र संख्या के साथ भेजे।

कहार एक पारम्परिक मनुष्य वाहक के लिए प्राचीन देशज सम्बोधन है। कहार की तरह ही यह पत्रिका जानकारियों एवं लोगो के बीच सेतु बनने की कोशिश कर रहा है।

अनुक्रमणिका (Content)

क्र.सं. / Sl. No.	शीर्षक / Heading	लेखक / Author	पृष्ठ / Page
•	सम्पादकीय (हिंदी और अंग्रेजी)	राणा प्रताप सिंह	
1.	सब्जी फसलों में कीट प्रबंधन की नई तकनीकें और कृत्रिम बुद्धिमत्ता	अमन यादव, अनिल पटेल एवं रुद्र प्रताप सिंह'	1
2.	बीज, विज्ञान और भारत की खाद्य सुरक्षा का एक जीवंत अध्याय	रुद्र प्रताप सिंह	5
3.	Insect Pests of Agricultural Crops: Challenges and Sustainable Management	Aman Yadav, Anil Patel, Rudra Pratap Singh & Vinod Kumar Dubey	8
4.	अंधेरा भी देता है रौशनी	राणा प्रताप सिंह	13
5.	Pesticide Toxicity Across Ecosystem: Impact,	Shivangi Maheshwari, Vijay Laxmi Rai,	14
6.	Risks and Mitigation Strategies	Vinod Kumar and Aradhya Raj	
7.	प्रकृति–संस्कृति समृद्धि के भू–सांस्कृतिक मानचित्र से सनातन विकास का रास्ता	जलपुरुष राजेन्दर सिंह	17
8.	अनूठा उदाहरण	अज्ञात	21
9.	कृत्रिम बुद्धिमत्ता बनाम प्रकृतिः अरावली की अस्मिता और हमारे संवैधाानिक दायित्व	जलपुरुष राजेन्दर सिंह	22
10.	नदी किनारे गांव है	राणा प्रताप सिंह	23
11.	शरीर की भाषा	योगेन्द्रसिंह छत्रसिंह झाला	24
12.	काकरोचः जीवविज्ञान से जीवन–दर्शन तक	मनमोहन प्रकाश	26
13.	औरत	रणवीर सिंह दहिया	27
14.	बच्चे के उज्ज्वल भविष्य का सबसे बड़ा निवेश : जीवन के प्रथम 1000 दिन–भविष्य की नींव रखने वाला स्वर्णिम अवसर	अशीष सिंह	28
15.	मन को यूँ बहलाना क्या	राणा प्रताप सिंह	29
16.	संविधान और वेद	जलपुरुष राजेन्दर सिंह	30
17.	हे विराट वृक्ष दो क्षमा...	पं0 धीरज मिश्र 'शाण्डिल्य'	31
18.	ढेर सारी लड़ाइयों के बीच प्रेम	राणा प्रताप सिंह	32
19.	प्रतिशोधः न, धर्ममार्गः	गणेश बाजपेई	33
20.	रेत का बुर्ज	सत्येन्द्र कुमार सिंह 'बाबा पृथ्वी'	33
21.	भोजपुरी भाषा के संवैधानिक दर्जा के सवाल	नरसिंह	34
22.	डोली	कृष्णदेव 'घायल'	36
23.	गजल	मंगतराम शास्त्री 'खड़तल'	37
24.	Health, Nutrition, and Lifestyle of Incarcerated Males: Insights from District Prisons in Uttar Pradesh, India	Sunita Mishra & Kuril Sanjeet	38
25.	Development of Banana Plantlets through Micro propagation Techniques	Uttam Kumar, R. S. Sengar, Nidhi Singh & Garima Sharma	48
26.	नृत्य में सम्मान		50
27.	From Kitchen to the Air we breathe: Indoor Cooking and Particulate Matter Emissions	Mayuri Wakade & Sushmitha Baskar	51
28.	रिश्ते	गणेश शंकर बाजपेई	58
29.	Zoonotic Diseases: When Animal Health becomes Human Health	Kaustubham Narayan Dixit	59
30.	آب آلودگی اور حفاظتی تدابیر	Meraj Uddin معراج الدین	62

सम्पादकीय



बीते वर्ष का बदलता मौसम

अप्रैल के आखिरी दिनों में कई इलाके गर्म हो गए थे, पर मई शुरू होते ही बारिश आ गयी और कटने को तैयार फसलें खराब हो गई। कई क्षेत्रों में तेज आंधी ने भी खूब उत्पात मचाया। फिर कुछ ही दिनों बाद पारे का ताप पैंतालीस से पचास डिग्री सेल्सियस पहुँचने लगा। जाहिर है, धूप और तपिश से त्राहि-त्राहि मचनी ही थी। बिजली की कमी ऊपर से गर्मी बढ़ते ही पंखे, कूलर और एसी लगातार चलने लगे। गर्मियों में लोड बढ़ने से तार और ट्रांसफार्मर बार-बार जल जाते। बिजली आती-जाती रहती, गर्मी कितनी भी हो। थोड़े दिनों ही सही इस साल सर्दी भी खूब पड़ी। बारिश का तो अब कोई हिसाब ही नहीं रहता। जलवायु परिवर्तन की चर्चा भी कई वर्षों से चल रही है। परन्तु इस बार सुपर एल नीनो और ला नीना जैसी प्राकृतिक घटनाओं की भी आशंका बन रही है, जिससे मौसम का अनुमान लगाना और कठिन हो गया है। समुद्री ताप के घटने-बढ़ने और हवाओं के प्रवाह से प्रभावित होकर गर्म और ठण्ढे पानी के बहाव से जुड़ी जलवायु जनित भौगोलिक आपदाओं से इस वर्षबारिश कम होने की आशंका थी, पर कई इलाकों में बारिश खूब हुई। पहाड़ दरके तो बाढ़ की विभीषिका भी डराने लगी।

प्रश्न है, ऐसे में लोग क्या करें ? घरों में छिपे रहें, एसी चलायें और पानी पीते रहें। परन्तु जिनके पास घर नहीं है, एसी नहीं है, पानी नहीं है, बिजली नहीं है, वे क्या करें ?

आजकल हर ओर लम्बी चौड़ी फराटेदार सड़कें बन रहीं हैं, और कुछ बरसात में टूट भी रही है। सड़कों के किनारे लगातार नए शहर और बाजार बस रहें हैं। बहुमंजिला इमारतें लोगों और पर्यटकों से ठसाठस भरी रहती हैं। पहाड़, समुद्र, शहर, धर्म स्थान सभी सर्दियों और गर्मियों में पर्यटकों से भर जाते।

लोग समृद्ध हो रहे हैं, यात्राएँ भी बढ़ रही है और सुविधाओं की मांग भी। रिंग रोड बनते ही शहरों के बाहरी हिस्सों में अनियोजित फैलाव होने लगता। राजधानियों के चारों ओर धड़ल्ले से औद्योगिक और आर्थिक क्षेत्र विकसित हो रहे हैं। तेज आर्थिक विकास, नए निवेश, नए रोजगार सृजन और राष्ट्रीय तथा क्षेत्रीय समृद्धि के लिए इन आधारभूत संरचनाओं के महत्व को नकारा नहीं जा सकता। पर बड़े शहरों में गर्मी के ऐसे द्वीप बढ़ते जा रहे हैं, जिनमें दिन तो तपते ही हैं, रातें भी बहुत गर्म बनी रहती। शहरों में बढ़ते कंक्रीट के जंगल दिन भर तेज धूप और गर्मी सोखते हैं, और रात भर उसे उत्सर्जित करते रहते, जो एअर कंडीशनर से निकलती ऊष्मा के साथ मिलकर शहर की हवा को रात में भी दिन की तरह ही गरम रखता है। पुराने विशाल पेड़ो और हरियाली की कमी से प्रकाश संश्लेषण में निकलने वाला ऑक्सीजन वातावरण में निरंतर कम होता जा रहा हैं, जबकि सांसों से, गाड़ियों से, घरों से, बाजारों से, और कारखानों से निकलने वाला कार्बन का उत्सर्जन लगातार बढ़ता जा रहा है।

हम जानते हैं कि ऑक्सीजन की अधिकता वातावरण को ठंढा रखती है, और कार्बन डाई ऑक्साइड की अधिकता मौसम को गर्म कर देती। पेड़-पौधे ज्यादा हों तो गर्मी कम चुभेगी और हवा में प्राण वायु ऑक्सीजन भी बढ़ जायेगी। पेड़ लगाना और उसे बड़ा करना विकास का सबसे सस्ता सौदा है। सरकारों के पास वन, बागवानी और पर्यावरण संरक्षण के अनेकों विभाग हैं, बजट है और योजनायें भी। पर तब भी पानी और पेड़ साल-दर साल कम के कम ही रहते। कुछ लगते रहते और कुछ कटते रहते। जो पेड़ कटते हैं, वे पुराने और विशाल थे तथा उनसे ऑक्सीजन बहुत निकलती थी, जो लगते हैं, उनमें अधिकांश सूख जाते या उनकी कम बढ़त से ऑक्सीजन कम निकलती। कुछ तो है कि वृक्षारोपण के वर्ष दर वर्ष बढ़ते आंकड़ों के बावजूद हवा गर्म ही रहती और मौसम बदलता ही रहता।

गर्मी में धूप की तल्खी बढ़ रही है, और जाड़े में धुंध का घनत्व। पेड़ उगाना सस्ता काम है, जो लोग करना नहीं चाहते। बहुत से बड़े और विशाल पेड़ कटते हैं, तो थोड़ी चर्चा होती है। झील, तालाब तथा नदियाँ गाद, कचरे से भर जाते और इनके किनारों पर दबंगों का कब्जा हो जाता। सड़कें हैं, पर किनारों पर पेड़ नहीं हैं। पार्कों और कॉलोनियां में पेड़ों की गिनती बहुत छोटी रह जाती। नदियों के किनारे बहुमंजिला इमारतों की पंक्तियाँ खड़ी हो गयीं, उद्योग लग गए, पर पेड़ नहीं लगे। एक बड़ा पेड़ कटता है, तो सैकड़ों जंतुओं और वनस्पतियों का घर उजड़ जाता। कार्बन उत्सर्जन तो बढ़ते विकास से बढ़ रहा है, परन्तु कार्बन अवशोषित करने वाले क्षेत्र साल दर साल घटते जा रहे हैं। पर कहीं कोई बात नहीं होती। न लोगों में कोई बड़ी हलचल होती, न राजनीति में, न ही शासन-प्रशासन में।

पृथ्वी के जीवन के लिए पेड़, पानी, खेत, बागान, पार्क और जंगल जरूरी हैं, और विकास का मतलब सिर्फ मकान, उद्योग, सड़क और बाजार नहीं होता। एक स्वस्थ, सुखी, संपन्न और समावेशी समाज, जिसमें एकाधिकार, वर्चस्व, संघर्ष, घृणा, हिंसा और भ्रष्टाचार न हों, वही विकास है। विकास तब है, जब युद्ध और घृणा की जगह प्रेम, सद्भावना, सहयोग और शांति हो। मानवता की भावना पैदा करने वाला इकोसिस्टम हो, और समाज विसंगतियों, अत्याचारों और अशांति से मुक्त हों। परंतु इस विकास पर कोई विमर्श और संवाद नहीं हो रहा है।

भारत में अनुमानत: 75-80% घरों, दुकानों और संस्थानों में मात्र पंखे चलते हैं, 12-15% में कूलर और 8-10% में एसी। बड़ी इमारतें सेंट्रल एसी से लैस हो रहीं हैं। समृद्धि बढ़ने पर एसी बढ़ेंगे और उत्सर्जन भी। पर सोचना यह है, कि पेड़ और पानी कैसे बढ़ें ? गर्मियों में जब पानी की जरूरत बढ़ जाती तो पानी हर ओर घट जाता।

पृथ्वी का प्रकृति-तंत्र अपना संतुलन बनाने के लिए किसी का इंतजार नहीं करेगा। उसकी व्यवस्था में न कोई राजनीति है, न भ्रष्टाचार और न ही विरोधाभास। बस करोड़ों वर्षों में विकसित हुई एक प्राकृतिक व्यवस्था है, जिसकी बारीकियों तक मनुष्य ठीक से अभी पहुँच भी नहीं पाया है। प्रकृति को मनुष्य से अधिक अपनी समूची व्यवस्था को अक्षुण्ण रखने की चिंता है, ताकि पृथ्वी की जीवन्तता बची रहे। मनुष्य के साथ या मनुष्य के बिना।

राणा प्रताप

(राणा प्रताप सिंह)

Editorial

The Changing Weather of the Past Year

By the end of April, many regions had already heated up, but rain arrived with the onset of May, damaging crops that were ready for harvest. Strong storms also wreaked havoc in several areas. Then, just a few days later, temperatures began to soar, reaching between 45 and 50 degrees Celsius. Naturally, the intense heat and scorching sun caused widespread distress. To make matters worse, there were power shortages. As the heat intensified, fans, coolers, and air conditioners ran incessantly; the increased load during summer frequently caused wires and transformers to burn out. Power supply became erratic, regardless of the sweltering heat.

Winter, too, was quite severe this year, albeit briefly. Rainfall patterns have become completely unpredictable. While climate change has been a topic of discussion for years, the looming possibility of natural phenomena like 'Super El Niño' and 'La Niña' is making weather forecasting increasingly difficult. Although climate-driven geographical disasters linked to fluctuating sea temperatures and wind-driven currents raised fears of deficient rainfall, many regions actually experienced heavy downpours. Landslides in the mountains triggered terrifying floods.

The question arises: what should people do in such a situation? Stay indoors, run the AC, and keep drinking water? But what about those who lack homes, air conditioning, water, or electricity?

Expansive, smooth highways are being constructed everywhere, yet a few begin to crumble shortly after the first monsoon rains. New cities and markets are constantly springing around them. Multi-story buildings remain packed with residents and tourists alike. Mountains, coastal areas, cities, and pilgrimage sites teem with tourists during both winter and summer.

As people become more prosperous, travel and the demand for amenities will inevitably increase. The construction of ring roads often triggers unplanned urban sprawl into the outskirts of cities. Industrial and economic zones are being rapidly developed around capital cities. The importance of this infrastructure for rapid economic growth, new investments, job creation, and national and regional prosperity cannot be denied. However, "heat islands" are proliferating in major cities, where not only are the days scorching, but the nights also remain sweltering. The growing "concrete jungles" in cities absorb intense sunlight and heat throughout the day and radiate it back at night; this, combined with the heat emitted by air conditioners, keeps the city air as hot at night as it is during the day. Due to the scarcity of large, old trees and greenery, the oxygen released through photosynthesis is steadily declining in the atmosphere, while carbon emissions from respiration, vehicles, households, markets, and factories continue to rise.

We know that an abundance of oxygen keeps the atmosphere cool, whereas an excess of carbon dioxide warms the climate. If there are more trees and plants, the heat will feel less oppressive, and the level of life-sustaining oxygen in the air will increase. Planting and nurturing trees is also the most cost-effective form of development. Governments possess numerous departments dedicated to forestry, horticulture, and environmental conservation, along with budgets and schemes. Yet, water resources and tree cover continue to dwindle year after year. While some trees are planted, others are cut down. The trees that are felled are often old and massive—major sources of oxygen—whereas many of the newly planted plantlets get wither away or grow too slowly to generate significant oxygen. Despite the year-on-year rise in tree-planting figures, the air remains hot, and the weather patterns continue to shift.

The intensity of the sun heat is increasing during the summer, as is the density of smog in winter. Growing trees is an inexpensive task, yet it is one that people are reluctant to undertake. The felling of large, majestic trees sparks only brief discussion. Meanwhile, lakes, ponds, and rivers become choked with silt and waste, and their banks are frequently encroached upon by powerful individuals. There are roads, yet no trees line their edges. The number of trees in parks and residential colonies remains woefully low. Rows of high-rise buildings and industries have sprung up along riverbanks, yet trees have not been planted. When a single large tree is felled, the habitat of hundreds of animal and plant species is destroyed. While carbon emissions rise alongside development, the areas that absorb carbon are shrinking year by year. Yet, there is no discussion about this—no stir among the public, in politics, or within the administration.

Trees, water, fields, orchards, parks, and forests are essential for life on Earth; development does not merely mean houses, industries, roads, and markets. True development lies in a healthy, happy, prosperous, and inclusive society—one free from monopoly, dominance, conflict, hatred, violence, and corruption. Development is realized when love, goodwill, cooperation, and peace replace war and hatred; when the ecosystem fosters a spirit of humanity, and society is free from disparities, oppression, and unrest. Yet, there is no discourse or dialogue regarding this kind of development.

In India, an estimated 75–80% of homes, shops, and institutions rely solely on ceiling fans, while 12–15% use air coolers and 8–10% use air conditioners. Large buildings are increasingly being equipped with central air conditioning. As prosperity grows, the use of air conditioners—and consequently, emissions—will rise. The crucial question, however, is how to increase tree cover and water resources. In summer, when the need for water peaks, water supplies dwindle everywhere.

Earth's natural system will not wait for anyone to restore its balance. That system is devoid of politics, corruption, or contradictions; it is simply a natural order that has evolved over millions of years—one whose intricacies humanity has yet to fully comprehend. For the Nature the greater concern is to preserve the integrity of the entire ecosystem, ensuring the Earth's vitality endures—with or without humanity.

Rana Pratap

(Rana Pratap Singh)

कृषि

समकक्ष समीक्षित
विशेष खण्ड : कृषि पर्यावरण

सब्जी फसलों में कीट प्रबंधन की नई तकनीकें और कृत्रिम बुद्धिमत्ता

अमन यादव, अनिल पटेल एवं रुद्र प्रताप सिंह*

सार

सब्जी वाली फसलें पूरे विश्व में खाद्य और पोषण सुरक्षा का एक आधार हैं क्योंकि उनमें आवश्यक विटामिन, खनिज, आहार फाइबर और जैव सक्रिय पदार्थ होते हैं। हालांकि, गहन सब्जी उत्पादन प्रणालियाँ कीटों, रोगों और निमेटोड्स के प्रति अत्यधिक संवेदनशील होती हैं, जिससे उत्पादन और गुणवत्ता में भारी हानि होती है। पारंपरिक कीट प्रबंधन विधियाँ, जो मुख्यतः रासायनिक कीटनाशकों का उपयोग करती हैं और कई गंभीर समस्याएँ उत्पन्न कर चुकी हैं जैसे कि कीटनाशक प्रतिरोध का विकास, पर्यावरण प्रदूषण, जैव विविधता पर प्रभाव और खाद्य सुरक्षा में खतरे। पिछले कुछ वर्षों में कृत्रिम बुद्धिमत्ता, मशीन लर्निंग, इंटरनेट ऑफ थिंग्स, रिमोट सेंसिंग, रोबोटिक्स और डिजिटल कृषि में तीव्र विकास हुआ है, जिसने सब्जी वाली फसलों में कीट प्रबंधन के दृष्टिकोण को बदल दिया है। ये नई तकनीकें कीटों का शीघ्र पता लगाने, वास्तविक समय निगरानी, पूर्वानुमान विश्लेषण और स्थान विशिष्ट हस्तक्षेप को सक्षम बनाती हैं, जिससे कीटनाशकों पर निर्भरता कम होती है और प्रभावशीलता बढ़ती है। यह शोध पत्र सब्जियों के वैश्विक और भारतीय महत्व, पारंपरिक कीट नियंत्रण की सीमाओं, तथा नवीन कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित और नवाचारी कीट प्रबंधन प्रणालियों के बारे में जानकारी देता है। इन तकनीकों को समेकित कीट प्रबंधन रणनीतियों के साथ संयोजित करने से पर्यावरण के अनुकूल और आर्थिक रूप से टिकाऊ सब्जी उत्पादन प्रणाली विकसित की जा सकती है।

Abstract

Vegetable crops are one of the bases of food and nutritional security in the world since they provide diets with necessary vitamins, minerals, dietary fibre, and bioactive substances that the all humanity requires. Intensive vegetable production systems are, however, very susceptible to insect pests, diseases, and nematodes, thus causing massive loss in yield and quality. The traditional methods of pest management that use predominantly chemical pesticides have brought about grave challenges like the development of resistance to pesticides, environmental pollution, effect on biodiversity, and risk to food safety. Over the past few years, there has been swift development in artificial intelligence (AI), machine learning, Internet of Things (IoT), remote sensing, robotics, and digital agriculture that has disrupted the pest management approach to the vegetable crops. The new technologies will enable early detection of pests, real-time monitoring, predictive analytics and site-specific interventions, thus reducing dependence on pesticides and improving effectiveness. This paper presents a review of the worldwide and Indian significance of vegetables, drawbacks of traditional pest control, and the latest AI-based and innovative pest management systems. A combination of these technologies with integrated pest management (IPM) strategies can create a viable avenue to the development of sustainable systems of production of vegetables in an eco-friendly and economical manner.

Keywords: Pest management, Artificial intelligence (AI), Insect, Internet of Things (IoT)

परिचय

सब्जी उत्पादन विश्व खाद्य सुरक्षा, पोषण स्वास्थ्य और आजीविका के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। इनमें विटामिन A, विटामिन C, विटामिन K, फोलेट्स, पोटेशियम और आयरन जैसे खनिज, एंटीऑक्सीडेंट और आहार फाइबर प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। नियमित रूप से सब्जियों का सेवन करने वाले लोगों का संबंध हृदय रोग, मधुमेह, मोटापा और कुछ प्रकार के कैंसर से

कीट विज्ञान विभाग, आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या–224229 (उ.प्र.) भारत
*ईमेलः rudrapsingh@nduat.org

जोड़ा गया है। इसलिए, सब्जियाँ संतुलित आहार और सामुदायिक पोषण कार्यक्रमों का अनिवार्य हिस्सा हैं (FAO, 2020)।

आय में वृद्धि, शहरीकरण का विकास और जनसंख्या में वृद्धि ने विश्व स्तर पर सब्जियों की मांग को बढ़ा दिया है क्योंकि लोग स्वस्थ आहार के प्रति अधिक जागरूक हो गए हैं। विश्व में सब्जियों का वार्षिक उत्पादन 1.1 अरब टन से अधिक हो चुका है, जो कुल बागवानी उत्पादन का लगभग एक–तिहाई है। वैश्विक उत्पादन में चीन लगभग 650 मिलियन टन वार्षिक उत्पादन के साथ अग्रणी है, जबकि भारत 200 मिलियन टन से अधिक वार्षिक उत्पादन के साथ दूसरे स्थान पर है। अन्य प्रमुख उत्पादक देशों में संयुक्त राज्य अमेरिका, तुर्की, रूस, नाइजीरिया और वियतनाम शामिल हैं, जहाँ प्रत्येक देश 18 से 35 मिलियन टन के बीच उत्पादन करता है। चीन और भारत मिलकर विश्व के 70 प्रतिशत से अधिक सब्जी उत्पादन का योगदान करते हैं, जो एशिया के महत्व को दर्शाता है (FAO, 2022)। सब्जियों का महत्व उनके उपभोग के पैटर्न से भी स्पष्ट होता है। विश्व में प्रति व्यक्ति दैनिक सब्जी उपभोग औसतन 250–300 ग्राम है, लेकिन विभिन्न क्षेत्रों में इसमें काफी अंतर होता है। चीन (350 ग्राम/दिन), तुर्की और ईरान (320 ग्राम/दिन) में उच्च खपत दर्ज की गई है। भारत में औसत सब्जी सेवन लगभग 280 ग्राम/दिन है, जो विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा अनुशंसित 400 ग्राम/दिन से कम है। इसके विपरीत, संयुक्त राज्य अमेरिका और यूरोप के कुछ क्षेत्रों में यह 250 ग्राम/दिन से भी कम है (FAO, 2020)।

भारत विश्व का दूसरा सबसे बड़ा सब्जी उत्पादक देश है, जहाँ लगभग 11 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र में सब्जियों की खेती होती है और यह कुल बागवानी उत्पादन का लगभग 60 प्रतिशत हिस्सा है (FAO, 2022)। राष्ट्रीय उत्पादन में आलू (55–56 मिलियन टन), प्याज (>30 मिलियन टन), और टमाटर (21 मिलियन टन) प्रमुख हैं (Oerke, 2006)। अन्य महत्वपूर्ण सब्जियों में बैंगन, पत्ता गोभी, फूल गोभी, भिंडी और कद्दूवर्गीय फसलें शामिल हैं। सब्जियाँ किसानों की आय बढ़ाने, ग्रामीण रोजगार सृजन करने में, छोटे और सीमांत किसानों को सहारा देने और पोषण सुरक्षा में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। सब्जी वाली फसलें कीटों, रोगों और निमेटोड्स के प्रति अत्यधिक संवेदनशील होती हैं, जिसके कारण विश्व स्तर पर 20–40 प्रतिशत तक उपज हानि होती है और कुछ मामलों में यह 50 प्रतिशत तक पहुँच जाती है, विशेषकर टमाटर, बैंगन, पत्ता गोभी, मिर्च और भिंडी में (Oerka, 2006)। कीटों के प्रकोप से किसानों को आर्थिक नुकसान उठाना पड़ता है। किसान इन नुकसानों को कम करने के लिए लंबे समय से भारी मात्रा में रासायनिक कीटनाशकों का उपयोग करते रहे हैं।

पारंपरिक कीट प्रबंधन की सीमाएँ

पारंपरिक कीट प्रबंधन मुख्यतः रासायनिक और प्रतिक्रियात्मक होता है। पारंपरिक कीट प्रबंधन में कीटनाशकों के अत्यधिक उपयोग से निम्नलिखित समस्याएँ उत्पन्न हुई हैं:

- हेलिकोवर्पा आर्मिजेरा (फल छेदक कीट), स्पोडोप्टेरा लिटुरा (तंबाकू इल्ली), एफिड्स (चेपा), सफेद मक्खी (बेमीसिया टैबासी), थ्रिप्स और डायमंडबैक मॉथ (प्लूटेला जाइलोस्टेला) जैसे प्रमुख कीटों में कीटनाशक प्रतिरोध का विकास (Sharma and Ortiz, 2000)।
- कीटनाशक अवशेष, जो उपभोक्ताओं के स्वास्थ्य के लिए खतरनाक होते हैं और सख्त नियमों के कारण फसलों की विपणन क्षमता को प्रभावित करते हैं (Pimentel, 2005)।
- मिट्टी और जल का प्रदूषण।
- परागणकर्ताओं और प्राकृतिक शत्रुओं जैसे लाभकारी जीवों का विनाश (Pretty and Bharucha, 2015)।
- कृषि पारिस्थितिकी तंत्र का असंतुलन और द्वितीयक कीट प्रकोप।

इन सीमाओं के कारण ज्ञान–आधारित, डेटा–समर्थित और पर्यावरण–अनुकूल कीट प्रबंधन विधियों की आवश्यकता है।

सब्जी फसलों में नवीन कीट प्रबंधन तकनीकें

कृत्रिम बुद्धिमत्ता और मशीन लर्निंग आधारित दृष्टिकोण

कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित प्रणालियाँ छवि प्रसंस्करण, डीप लर्निंग, कन्वोल्यूशनल न्यूरल नेटवर्क और मशीन लर्निंग एल्गोरिदम का उपयोग करके प्रारंभिक अवस्था में कीटों और रोगों का पता लगा सकते हैं। हेलिकोवर्पा आर्मिजेरा, स्पोडोप्टेरा लिटुरा, एफिड्स (चेपा), सफेद मक्खी, थ्रिप्स और लीफ माइनर जैसे कीटों का पता स्मार्टफोन आधारित एप्लिकेशन और कैमरा युक्त उपकरणों के माध्यम से लगाया जा सकता है। ये प्रणालियाँ सटीक और शीघ्र निदान प्रदान करती हैं (Liu *et al.* 2020; Ferentinos, 2018)। मशीन लर्निंग मॉडल पिछले डेटा और मौसम के आधार पर कीट प्रकोप का पूर्वानुमान भी लगाते हैं (Liakos *et al.* 2018)।

इंटरनेट ऑफ थिंग्स और स्मार्ट सेंसर तकनीक

इंटरनेट ऑफ थिंग्स आधारित कीट प्रबंधन प्रणालियाँ जुड़े हुए सेंसरों के नेटवर्क का उपयोग करती हैं, जो तापमान, आर्द्रता, वर्षा, पत्तियों की नमी तथा मिट्टी की आर्द्रता जैसे सूक्ष्म जलवायु (माइक्रोक्लाइमेट) कारकों का अवलोकन करते हैं। ये सभी कारक कीट जनसंख्या तथा रोगों के विकास पर गहरा प्रभाव डालते हैं।

इनमें स्मार्ट फेरोमोन ट्रैप, जिनमें अंतर्निहित ऑप्टिकल सेंसर और कृत्रिम बुद्धिमत्ता लगे होते हैं, कैमरों की सहायता से कीटों की पहचान स्वतः करते हैं और वास्तविक समय (रियल–टाइम) डेटा को क्लाउड कंप्यूटिंग तक भेजते हैं। ये प्रणालियाँ कीट निगरानी को अधिक प्रभावी बनाती हैं तथा श्रम पर निर्भरता को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं (Kumar and Singh, 2021)।

ड्रोन और रिमोट सेंसिंग

मल्टीस्पेक्ट्रल तथा थर्मल सेंसरों से युक्त ड्रोन (मानवरहित हवाई वाहन) का फसलों में उपयोग कीट एवं रोग प्रकोप की निगरानी के लिए तेजी से लोकप्रिय हो रहा है (Zhang and Kovacs, 2012)। ये तकनीकें वनस्पति सूचकांकों, छत्र तापमान तथा रंग में होने वाले परिवर्तनों के आधार पर कीटों द्वारा उत्पन्न तनाव की पहचान करती हैं।

ड्रोन के माध्यम से सर्वेक्षण (स्काउटिंग) करने से प्रकोप के हॉटस्पॉट की शीघ्र पहचान संभव होती है, जिससे प्रभावित क्षेत्रों में लक्षित हस्तक्षेप किए जा सकते हैं। इसके अतिरिक्त, स्वचालित ड्रोन द्वारा कीटनाशकों का छिड़काव मानव श्रम और समय की बचत करता है तथा छिड़काव को समान रूप से वितरित करने में सहायक होता है (Huang *et al.* 2015)।

प्रिसिजन कीटनाशक उपयोग और रोबोटिक्स

प्रिसिजन कृषि के माध्यम से कृत्रिम बुद्धिमत्ता से नियंत्रित रोबोट, वेरिएबल रेट एप्लीकेटर तथा स्वायत्त (ऑटोनॉमस) रोबोट विकसित करना संभव हो गया है, जो किसी विशेष स्थान पर लक्षित रूप से कीटनाशकों का उपयोग कर सकते हैं। ये प्रणालियाँ पारंपरिक समान (ब्लैंकेट) छिड़काव की तुलना में संपर्क कीटनाशकों के उपयोग को लगभग 30 से 50 प्रतिशत तक कम कर सकती हैं।

रोबोटिक निराई (वीडिंग) तथा कीट नियंत्रण रोबोट के उपयोग से सब्जी खेती को अधिक टिकाऊ बनाया जा सकता है, क्योंकि ये रासायनिक इनपुट की मात्रा को कम करते हैं, लाभकारी जीवों की रक्षा करते हैं तथा उत्पादन लागत को घटाने में सहायता करते हैं (Bongiovanni and Lowenberg-Deboer, 2004)।

निर्णय समर्थन प्रणाली

निर्णय समर्थन प्रणालियाँ कीट निगरानी डेटा, मौसम पूर्वानुमान, फसल वृद्धि मॉडल तथा आर्थिक आकलन को एकीकृत करके प्रभावी उपकरण प्रदान करती हैं। ये प्रणालियाँ किसानों को कीटनाशकों के चयन, उनकी मात्रा (डोज), उपयोग की विधि तथा रासायनिक और गैर–रासायनिक उपायों के समन्वय के बारे में सलाह देती हैं।

ऑनलाइन प्लेटफॉर्म और डिजिटल डैशबोर्ड, मोबाइल–आधारित परामर्श प्रणालियों का उपयोग करके तथा किसानों को वास्तविक समय (रियल–टाइम) जानकारी उपलब्ध कराकर, समेकित कीट प्रबंधन को अपनाने में सुधार कर सकते हैं (FAO, 2023)।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित कीट प्रबंधन के लाभ

कृत्रिम बुद्धिमत्ता संचालित कीट प्रबंधन कई महत्वपूर्ण लाभ प्रदान करता है:

- शीघ्र और सटीक कीट पहचान
- कीटनाशक उपयोग में कमी
- उत्पादन और गुणवत्ता में सुधार
- पर्यावरणीय स्थिरता
- खाद्य सुरक्षा में सुधार
- किसानों की आय में वृद्धि

भविष्य की संभावनाएँ और चुनौतियाँ

कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित कीट प्रबंधन के कार्यान्वयन से जुड़ी कई चुनौतियाँ हैं, जिनमें उच्च प्रारंभिक लागत, छोटे किसानों में डिजिटल साक्षरता का निम्न स्तर, डेटा की उपलब्धता की कमी, तथा कीट मॉडल का क्षेत्र–विशिष्ट होना शामिल है। बड़े स्तर पर सफलता प्राप्त करने के लिए विस्तार सेवाओं को सुदृढ़ करना, डिजिटल अवसंरचना को बेहतर बनाना, तथा सार्वजनिक और निजी क्षेत्रों के बीच साझेदारी विकसित करना अत्यंत आवश्यक है, जो व्यापक स्तर पर अपनाने में सहायक सिद्ध होगा।

निष्कर्ष

सब्जी वाली फसलें विश्व तथा भारत की खाद्य एवं पोषण सुरक्षा के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण मानी जाती हैं, लेकिन ये कीटों के आक्रमण के कारण होने वाले नुकसान के प्रति बहुत संवेदनशील होती हैं। कृत्रिम बुद्धिमत्ता, इंटरनेट ऑफ थिंग्स, ड्रोन, रोबोटिक्स तथा निर्णय सहायता प्रणाली जैसी अन्य नवाचार तकनीकें, व्यापक रूप से उपयोग किए जाने वाले कीटनाशक–आधारित प्रबंधन के लिए एक सतत समाधान प्रदान करती हैं। कृत्रिम बुद्धिमत्ता आधारित संसाधनों का

समेकित कीट प्रबंधन दृष्टिकोण के साथ एकीकरण, कीटनाशकों पर निर्भरता को कम करने, उत्पादकता बढ़ाने तथा पर्यावरण संरक्षण में महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है। इन आधुनिक तकनीकों का कीट प्रबंधन में समावेशन, भविष्य में सब्जी उत्पादन की सतत और सुदृढ़ प्रणाली प्राप्त करने में एक महत्वपूर्ण कारक सिद्ध होगा।

Vegetable crops are crucial into global and Indian food and nutritional security, but are very susceptible to losses due to the attacks of pests. Emerging innovative technologies, such as artificial intelligence, the Internet of Things, drones, robotics, and decision support systems, offer a sustainable solution to the widely used pesticide-based operations. The integration of AI-based resources with the integrated pest management approaches can contribute substantially to the decrease in pesticide reliance, improved productivity, and environmental protection. The integration of these modern technologies in pest management will be a critical factor in the attainment of sustainable and robust systems of production of vegetables in the future.

References:

Bongiovanni, R. and Lowenberg-Deboer, J. (2004). Precision agriculture and sustainability. *Precision Agriculture, 5*(4), 359–387.

Ferentinos, K. P. (2018). Deep learning models for plant disease detection and diagnosis. *Computers and Electronics in Agriculture, 145*, 311–318.

Food and Agriculture Organization of the United Nations. (2020). *Digital technologies in agriculture and rural areas:* Briefing paper.

Food and Agriculture Organization of the United Nations. (2022). *FAOSTAT: Crops and livestock products*.

Food and Agriculture Organization of the United Nations. (2023). *Integrated pest management.*

Huang, Y., Hoffmann, W. C., Lan, Y., Wu, W. and Fritz, B. K. (2015). Development of a spray system for an unmanned aerial vehicle platform. *Applied Engineering in Agriculture, 25*(6), 803–809.

Kumar, R. and Singh, J. (2021). Smart agriculture using IoT and machine learning techniques. *Journal of Cleaner Production, 280*, 124184.

Liakos, K. G., Busato, P., Moshou, D., Pearson, S. and Bochtis, D. (2018). Machine learning in agriculture: A review. *Sensors, 18*(8), 2674.

Liu, Y., Wang, Y. and Wang, J. (2020). Image-based insect pest recognition using deep learning. *Computers and Electronics in Agriculture, 173*, 105393.

Oerke, E. C. (2006). Crop losses to pests. *Journal of Agricultural Science, 144*(1), 31–43.

Pimentel, D. (2005). Environmental and economic costs of pesticide application primarily in the United States. *Environment, Development and Sustainability, 7*(2), 229–252.

Pretty, J. and Bharucha, Z. P. (2015). Integrated pest management for sustainable intensification of agriculture. *Philosophical Transactions of the Royal Society B: Biological Sciences, 370*(1681), 20150067.

Sharma, H. C. and Ortiz, R. (2000). Transgenics, pest management, and the environment. *Current Science, 79*(4), 421–437.

Zhang, C. and Kovacs, J. M. (2012). The application of small unmanned aerial systems for precision agriculture. *Precision Agriculture, 13*(6), 693–712.

विशिष्ट

विशेष खण्ड : कृषि पर्यावरण

बीज, विज्ञान और भारत की खाद्य सुरक्षा का एक जीवंत अध्याय

रुद्र प्रताप सिंह

'किसी वैज्ञानिक की सबसे बड़ी उपलब्धि प्रयोगशाला में प्रकाशित शोधपत्र नहीं, बल्कि किसान के चेहरे पर दिखाई देने वाली संतुष्टि होती है।'

परिचय

नाम: डॉ. ज्ञानेन्द्र प्रताप सिंह



वर्तमान पद: कुलपति, आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या (उ०प्र०)

पूर्व निदेशक: निदेशक, राष्ट्रीय पादप आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो (NBPGR), नई दिल्ली तथा भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान (IIWBR), करनाल (भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (ICAR), नई दिल्ली)

जन्मतिथि: 17 मार्च 1964

जन्मस्थान: वाराणसी (उ०प्र०)

माता का नाम: स्व० फूल कुमारी सिंह

पिता का नाम: स्व. डॉ महातिम सिंह (ख्यातिलब्ध कृषि वैज्ञानिक एवं पूर्व कुलपति, गो.वि.पन्त कृ.वि.वि., पंतनगर)

शिक्षा:

- बी.एस.सी. (आनर्स) (1981–84): काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ०प्र०)
- एम.एस.सी. (कृषि) (1986–88): काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उ०प्र०)
- पी.एच.डी. (1992): चंद्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कानपुर (उ०प्र०)

शोध, शिक्षा एवं प्रशासनिक अनुभव

गेहूँ एवं जौ आधारित अनुसंधान में कृषि वैज्ञानिक, शिक्षण तथा वैज्ञानिक प्रशासन में तीन दशकों से अधिक समय का अनुभव

12 वर्ष का अध्यापन और 10 वर्ष से अधिक का प्रशासनिक नेतृत्व अनुभव

विकसित प्रमुख किस्मों में योगदान

84 गेहूँ किस्में (17 बायो संपोषित)– HD 2967, HD 3086, DBW 173, DBW 187, DBW 222, DBW 327, HD 3386 आदि के अलावा 3 जौ किस्में तथा 1 आलू किस्म विकसित की गयीं।

वैज्ञानिक एवं प्रकाशन उपलब्धियाँ

450 शोध पत्र, 18 किताबें, 65 पुस्तक अध्याय, 57 तकनीकी बुलेटिन, 55 लोकप्रिय लेख, 5 नीति दस्तावेज।

सम्मान व सदस्यताएँ

18 राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय पुरस्कार, जिनमें 'विज्ञान श्री' व रफी अहमद किदवई पुरस्कार प्रमुख

भारत की कृषि व्यवस्था केवल खेतों और मौसम पर निर्भर नहीं है। इसके पीछे ऐसे वैज्ञानिकों का अथक परिश्रम भी छिपा है, जो वर्षों तक प्रयोगशालाओं, अनुसंधान खेतों और किसानों के बीच काम करते हैं। ऐसे ही वैज्ञानिक हैं **डॉ. ज्ञानेन्द्र प्रताप सिंह**– एक ऐसा नाम जिसने गेहूँ अनुसंधान, पादप प्रजनन, जर्मप्लाज्म संरक्षण और कृषि नेतृत्व के क्षेत्र में राष्ट्रीय पहचान बनाई। खेतों में नई उम्मीदें बोने वाले इस वैज्ञानिक की यात्रा आज उन्हें **आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज (अयोध्या)** के कुलपति पद तक ले आई है। हाल ही में उन्हें **'विज्ञान श्री' सम्मान** से अलंकृत किया जाना उनकी दशकों की वैज्ञानिक साधना का राष्ट्रीय सम्मान है।

काशी से शुरू हुई ज्ञान यात्रा

17 मार्च 1964 को वाराणसी की सांस्कृतिक धरती पर जन्मे डॉ. ज्ञानेन्द्र प्रताप सिंह का बचपन शिक्षा और कृषि विज्ञान के वातावरण में बीता। उनकी माता **स्वर्गीय फूल कुमारी सिंह** एक कुशल गृहिणी एवं पिता **स्वर्गीय डॉ. महातिम सिंह** देश के प्रतिष्ठित कृषि वैज्ञानिक, शिक्षक और पूर्व कुलपति थे। घर में शिक्षा, अनुशासन और शोध की संस्कृति ने बालक ज्ञानेन्द्र के व्यक्तित्व



कीट विज्ञान विभाग, आचार्य नरेंद्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या–224229 (उ.प्र.) भारत
ईमेल: rudrapsingh@nduat.org

को प्रारंभ से ही आकार दिया।

उन्होंने प्रारंभिक शिक्षा **सेंट्रल हिन्दू स्कूल, वाराणसी** से प्राप्त की। इसके बाद **काशी हिन्दू विश्वविद्यालय** से कृषि विज्ञान में स्नातक और परास्नातक की उपाधियाँ अर्जित कीं तथा **चन्द्रशेखर आजाद कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कानपुर** से आनुवंशिकी एवं पादप प्रजनन में पीएच.डी. प्राप्त की।

शिक्षा पूरी होते ही उन्होंने आरामदायक करियर नहीं चुना। उनका चयन भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद के कृषि वैज्ञानिक भर्ती बोर्ड द्वारा **राष्ट्रीय सोयाबीन अनुसंधान संस्थान, इंदौर** में वैज्ञानिक के रूप में हुआ। यहीं से खेतों और किसानों के साथ उनका वास्तविक रिश्ता शुरू हुआ।

जब चुनौती बनी मिशन

बीसवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में यह धारणा व्यापक थी कि पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार के धान–प्रधान क्षेत्रों में उच्च उत्पादकता वाला गेहूँ सफल नहीं हो सकता। डॉ. सिंह ने इस सोच को चुनौती दी। उनके नेतृत्व में विकसित **DBW-14** जैसी किस्मों ने धान–गेहूँ प्रणाली वाले क्षेत्रों में नई संभावनाओं के द्वार खोल दिए।

धीरे–धीरे किसान समझने लगे कि विज्ञान केवल प्रयोगशाला तक सीमित नहीं है; वह खेत की मिट्टी में भी जीवित रहता है। इसी कारण अनेक किसान आज भी उन्हें स्नेहपूर्वक **'गेहूँ वाले बाबू'** कहकर संबोधित करते हैं।

जब दुनिया पर मंडराया 'Ug99' का खतरा

सन् 2008 में अफ्रीका से उभरे गेहूँ के घातक काले तना रतुआ रोग **Ug99** ने वैश्विक खाद्य सुरक्षा को चुनौती दी। अनेक देशों की गेहूँ फसल संकट में थी।

डॉ. सिंह ने समय रहते वैज्ञानिकों का समन्वय किया, अंतरराष्ट्रीय स्तर पर विचार–विमर्श आयोजित किया और रोग प्रतिरोधी किस्मों के विकास पर विशेष बल दिया। उनके नेतृत्व में भारत ने पूर्व–सक्रिय अनुसंधान, निगरानी और प्रजनन कार्यक्रमों के माध्यम से इस संभावित संकट का सफलतापूर्वक सामना किया।

किसानों की भाषा में विज्ञान

डॉ. सिंह का मानना है कि यदि वैज्ञानिक की बात किसान तक सरल भाषा में नहीं पहुँचती, तो शोध अधूरा है। यही कारण है कि उन्होंने केवल शोधपत्र नहीं लिखे, बल्कि किसानों के लिए सरल भाषा में तकनीकी पुस्तिकाएँ और लोकप्रिय लेख भी तैयार किए।

:कम लागत में अधिक उत्पादन हेतु नवीनतम गेहूँ उत्पादन तकनीक' जैसी पुस्तकों ने हजारों किसानों को आधुनिक तकनीकों से परिचित कराया। **'मेरा गाँव, मेरा गौरव'** कार्यक्रम के अंतर्गत उन्होंने स्वयं गाँव–गाँव जाकर किसानों से संवाद स्थापित किया।

बदलती जलवायु के लिए नई सोच

जलवायु परिवर्तन आज भारतीय कृषि की सबसे बड़ी चुनौतियों में से एक है। बढ़ते तापमान, घटते जल संसाधन और असामान्य मौसम को ध्यान में रखते हुए डॉ. सिंह ने ऐसी गेहूँ किस्मों के विकास पर विशेष ध्यान दिया जो कम पानी, अधिक तापमान तथा प्रतिकूल परिस्थितियों में भी बेहतर उत्पादन दे सकें।

उनके नेतृत्व में विकसित **HD-2967, HD-3086, DBW-173, DBW-187 DBW-222, DBW 327** और **HD 3386**–जैसी किस्में आज देश के करोड़ों किसानों के बीच लोकप्रिय हैं। उनके योगदान से विकसित **84 गेहूँ (जिनमें 17 जैव–संपोषित), 3 जौ तथा 1 आलू की किस्म** भारतीय कृषि की महत्वपूर्ण उपलब्धियों में गिनी जाती हैं।

बीज बैंक के प्रहरी

भारतीय कृषि की भविष्य की सुरक्षा केवल वर्तमान फसल उत्पादन में नहीं, बल्कि आनुवंशिक विविधता के संरक्षण में भी निहित है। **राष्ट्रीय पादप आनुवंशिक संसाधन ब्यूरो (NBPGR)** के निदेशक के रूप में डॉ. सिंह ने 8,409 गेहूँ जर्मप्लाज्म अभिग्रहण राष्ट्रीय जीन बैंक में जोड़ने तथा 12,174 जर्मप्लाज्म लाइनों के वितरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

यह कार्य भविष्य की उन फसलों की नींव है जो बदलते जलवायु परिदृश्य में भी देश की खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करेंगी।

प्रयोगशाला से नीति निर्माण तक

डॉ. सिंह केवल वैज्ञानिक ही नहीं, बल्कि कुशल वैज्ञानिक प्रशासक भी हैं। भारतीय गेहूँ एवं जौ अनुसंधान संस्थान (IIWBR), करनाल के निदेशक के रूप में उन्होंने राष्ट्रीय गेहूँ एवं जौ सुधार कार्यक्रम को नई दिशा दी। विजन–2050 के अनुरूप अनुसंधान प्राथमिकताओं का पुनर्निर्धारण, अखिल



भारतीय समन्वित गेहूँ एवं जौ अनुसंधान परियोजना (AICRP) का सुदृढ़ीकरण, वैज्ञानिक मानव संसाधन का विकास तथा अनुसंधान गतिविधियों का पुनर्गठन उनके नेतृत्व की प्रमुख उपलब्धियाँ हैं।

आज कुलपति के रूप में भी उनका लक्ष्य केवल प्रशासन नहीं, बल्कि कृषि शिक्षा, अनुसंधान और नवाचार को समाज तथा किसानों की वास्तविक आवश्यकताओं से जोड़ना है।

शोध, सम्मान और वैश्विक पहचान

डॉ. सिंह के नाम **300 से अधिक शोध–पत्र, 18 पुस्तकें, 65 पुस्तक अध्याय, 57 तकनीकी बुलेटिन, 55 लोकप्रिय लेख तथा 5 नीति दस्तावेज** दर्ज हैं। उनके शोध कार्यों को विश्वभर में व्यापक मान्यता मिली है। उनका **h-index 34, i10-index 152** तथा **5,700 से अधिक उद्धरण** उनकी वैज्ञानिक प्रतिष्ठा का प्रमाण हैं।

उन्हें **17 राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय पुरस्कार** प्राप्त हो चुके हैं, जिनमें **रफी अहमद किदवई पुरस्कार** विशेष रूप से उल्लेखनीय है। वे **भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी (INSA)**, नेशनल एकेडमी ऑफ साइंसेज, इंडिया (NASI) तथा राष्ट्रीय कृषि विज्ञान अकादमी (NAAS) के निर्वाचित फेलो हैं।

अब **'विज्ञान श्री'** सम्मान ने उनके वैज्ञानिक जीवन में एक और गौरवपूर्ण अध्याय जोड़ दिया है।

'विज्ञान श्री' : एक वैज्ञानिक नहीं, एक विचार का सम्मान

'विज्ञान श्री' केवल किसी व्यक्ति को दिया गया पुरस्कार नहीं है। यह उस सोच का सम्मान है जो मानती है कि विज्ञान का अंतिम उद्देश्य समाज का कल्याण है। डॉ. ज्ञानेन्द्र प्रताप सिंह ने अपने पूरे वैज्ञानिक जीवन में इसी विचार को जीया है। उन्होंने प्रयोगशाला के शोध को खेत तक पहुँचाया, खेत की समस्याओं को विज्ञान का विषय बनाया और विज्ञान को नीति तथा समाज दोनों से जोड़ा।

अब लक्ष्य–आचार्य नरेन्द्र देव कृषि विश्वविद्यालय को नई ऊँचाइयों तक ले जाना

'विज्ञान श्री' सम्मान प्राप्त करना किसी वैज्ञानिक के जीवन का गौरवपूर्ण क्षण होता है, लेकिन डॉ. ज्ञानेन्द्र प्रताप सिंह के लिए यह यात्रा का अंतिम पड़ाव नहीं, बल्कि एक नई जिम्मेदारी की शुरुआत है। आज जब वे आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय, कुमारगंज, अयोध्या के कुलपति के रूप में कार्यभार संभाल रहे हैं, तब उनके सामने केवल एक विश्वविद्यालय का संचालन नहीं, बल्कि कृषि शिक्षा, अनुसंधान और किसान हितैषी नवाचारों के माध्यम से भविष्य के भारत का निर्माण करने का दायित्व है।

उनका विश्वास है कि कृषि विश्वविद्यालय केवल डिग्री प्रदान करने वाले संस्थान नहीं होने चाहिए, बल्कि ऐसे ज्ञान केंद्र बनने चाहिए जहाँ से निकलने वाला प्रत्येक शोध किसान के खेत तक पहुँचे, प्रत्येक विद्यार्थी नवाचार का वाहक बने और प्रत्येक तकनीक समाज के विकास में योगदान दे।

इसी सोच के साथ उनका लक्ष्य आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय को 'विकसित भारत–2047' के कृषि विजन का अग्रणी संस्थान बनाना है। आधुनिक कृषि शिक्षा, कृत्रिम बुद्धिमत्ता, ड्रोन तकनीक, जलवायु–स्मार्ट खेती, स्टार्टअप संस्कृति, जैव–संपोषित फसलें और किसान–केंद्रित अनुसंधान के माध्यम से वे विश्वविद्यालय को राष्ट्रीय उत्कृष्टता के केंद्र के रूप में स्थापित करना चाहते हैं।

इस विजन का एक महत्वपूर्ण आधार **हरित परिसर (Green Campus)**' भी है। सौर ऊर्जा, वर्षा जल संचयन, प्लास्टिक–मुक्त परिसर, जैविक अपशिष्ट प्रबंधन, जैव विविधता संरक्षण और पर्यावरण–अनुकूल अधोसंरचना के माध्यम से विश्वविद्यालय को एक ऐसे मॉडल कैंपस के रूप में विकसित करने की परिकल्पना है, जहाँ प्रकृति और विज्ञान साथ–साथ आगे बढ़ें।

डॉ. सिंह का मानना है कि **'विकसित भारत 2047'** का सपना तभी साकार होगा, जब कृषि विश्वविद्यालय ज्ञान, नवाचार और किसान समृद्धि के राष्ट्रीय केंद्र बनेंगे। उनके नेतृत्व में आचार्य नरेन्द्र देव कृषि एवं प्रौद्योगिक विश्वविद्यालय इसी दिशा में एक नई पहचान स्थापित करने की ओर अग्रसर है।

यही कारण है कि डॉ. ज्ञानेन्द्र प्रताप सिंह की कहानी केवल एक वैज्ञानिक की सफलता की कहानी नहीं, बल्कि उस दूरदर्शी नेतृत्व की कहानी है जो बीज से रोटी, प्रयोगशाला से खेत और खेत से विकसित भारत तक की यात्रा को संभव बनाना चाहता है।

बीज से रोटी तक

डॉ. ज्ञानेन्द्र प्रताप सिंह की यात्रा यह बताती है कि भारत की खाद्य सुरक्षा केवल सरकारी योजनाओं से नहीं, बल्कि उन वैज्ञानिकों की तपस्या से भी सुरक्षित होती है जो वर्षों तक बिना किसी शोर–शराबे के किसानों के लिए काम करते हैं।

आज जब वे कुलपति के रूप में नई पीढ़ी के कृषि वैज्ञानिकों को दिशा दे रहे हैं, तब उनकी सबसे बड़ी विरासत पुरस्कारों की सूची नहीं, बल्कि वे करोड़ों खेत हैं जहाँ उनकी विकसित किस्में लहलहा रही हैं।

विज्ञान भवन तक पहुँचना किसी वैज्ञानिक की सफलता हो सकती है, लेकिन डॉ. ज्ञानेन्द्र प्रताप सिंह की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि उनके विज्ञान ने खेतों को समृद्ध किया, किसानों का विश्वास जीता और भारत की थाली तक सुरक्षित रोटी पहुँचाने में अपना अमूल्य योगदान दिया।

यही है–खेत से विज्ञान भवन तक, और बीज से रोटी तक की एक प्रेरक यात्रा।

Agriculture

Special Section : Agricultural Environment

Insect Pests of Agricultural Crops: Challenges and Sustainable Management

Aman Yadav[1], Anil Patel[1], Rudra Pratap Singh[1]* & Vinod Kumar Dubey[2]

Abstract

The pests that pose the greatest danger to agricultural activities of the world are insects, which bring about massive losses of yields of the major crops like cereals, oilseeds, legumes, and horticultural crops. The result of food security, livelihoods, and the economy is reduced crop productivity of 20-40% per year by these pests. Pest management methods that are still being used in the traditional methods based on the use of mostly chemical pesticides have contributed to the prevalence of pesticide resistance, environmental pollution, and the destruction of the non-target population. This paper delves into the issues that have been brought about by insect pests in major crops, the cause of the pests outbreak either climate change or the weaknesses of traditional control solutions. It emphasizes the need to have sustainable pest management initiatives, where Integrated Pest Management (IPM) should be given central priority. IPM incorporates a variety of strategies, such as biological control, host-plant resistance, cultural control, and the use of selective pesticides, which limit the impact on the environment and still ensure that agricultural productivity remains high. Also, the article presents the emerging technologies, including precision agriculture, remote sensing, and genetic engineering, which promise much to control the population of pests more effectively. By implementing these new methods, dependency on the use of chemical pesticides can be minimized, increase control of pests, and achieve environmental sustainability. Environmentally friendly pest management is essential in terms of both future food security and the preservation of the environment and human health.

Key Words: Agricultural crops, Insect Pests, Sustainable approach, Management

1. Introduction

One of the most important biotic stressors that affect crop productivity on the global scale is insect pests. Insect infestations in the large agricultural areas result in large losses of yields with an average of 20-40 percent each year. These pests contain a great deal of species that feed on plant leaves, roots, stems, seeds, and reproductive organs thus reducing the amount of harvest and its quality. The agricultural yield loss does not only pose a threat to food security, but has also severe economic consequences to the farmers, especially in the developing areas, where outbreak of pests may lead to devastating losses to farmers. With the world population ever-growing, and the figure is projected to strive to about 9.7 billion by 2050, the food production demand is set to rise much higher. This, consequently, puts more pressure on agricultural systems to sustain high production and be able to deal with the continuous menace of insect pests. Pest insect management, therefore, will have to change to more sustainable approaches beyond the traditional chemical control that has not proven sustainable over the long run. The core of the balance between agricultural output and environmental sustainability is in the combination of the innovative scientific approaches, i.e., the molecular biology and genomics and precision agriculture. Modern agriculture could be brought to a more resource-efficient, precise approach to pest management through the use of technologies that allow identifying the increased presence of pests early, tracking their location in real-time, and adeptly intervene in the process. In addition, participatory strategies at the grassroot level are successful because farmers are involved in decision making on pest management

[1]*Department of Entomology, College of Agriculture, Acharya Narendra Deva University of Agriculture & Technology, Kumarganj, Ayodhya 224229 Uttar Pradesh, India*
[1]*Department of Genetics and Plant Breeding, Acharya Narendra Deva University of Agriculture & Technology, Kumarganj, Ayodhya 224229 Uttar Pradesh, India*
**Corresponding author email : rudrapsingh.doc@gmail.com*

processes. Therefore, to guarantee food security and protect the ecosystems, it is necessary to develop sustainable pest management systems that are flexible, scalable, and resilient to the effects of climate change and changing pest dynamics (Conde *et al.* 2025).

Chemical pesticides have been one of the foundation of modern farming methods over decades and the management of insect pests. The application of synthetic chemicals, however, has led to the emergence of resistance pesticides in a number of pest species, which are reducing the efficacy of the synthetic chemicals. Also, too much use of pesticides has resulted in negative environmental impacts, such as soil and water contamination, killing of non-target species (including positive insects and pollinators) and exposing humans to health risks. With the increase in climate change, there is also a shift in the range, the behavior, and the life cycle of the insect pests, which makes the process of pest management strategies even more difficult. Increased temperatures and varying precipitation will lead to pest outbreaks and their severity, which will contribute to an even greater food production challenge (Singh and Joshi, 2025).

Sustainable pest management strategies have become popular as a response to these problems. It is estimated that Integrated Pest Management (IPM), biological control, host-plant resistance, and ecological engineering are some of the approaches that are meant to reduce the use of chemicals in control. These measures aim at employing a mix of cultural, biological and mechanical methods of controlling pests using chemical remedies to control pest population in a friendly and cost efficient way. The increasing focus on such sustainable options is not only important to ensure the agricultural output is not threatened but also to ensure environmental and human health safety (Mythili *et al.* 2020).

2. Major Insect Pests of Key Crops

The severity of insect pest problems varies by crop and region. Below are the key pests of major crops and their impact.

2.1 Cereals

2.1.1 Rice (*Oryza sativa*)
Rice is a staple crop in Asia, Africa, and parts of the Americas. However, its production is frequently compromised by pests in rice as mentioned in Table 1.

Table 1. Major insect pests of rice

Sr.No.	Common Name	Scientific Name	Order	Family
1.	Yellow Stem borer	*Scirpophaga incertulas*	Lepidoptera	Pyralidae
2.	Leaf folder	*Cnaphalocrocis medinalis*	Lepidoptera	Pyralidae
3.	Brown plant hopper	*Nilaparvata lugens*	Hemiptera	Delphacidae
4.	Gundhi bug	*Leptocorisa acuta*	Hemiptera	Alydidae

2.1.2 Yellow stem borer (*Scirpophaga incertulas*)
2.1.2.1 Nature of Damage: The larva bores into the stem. It produces effects of dead heart during the vegetative phase where the main tiller dries and may be pulled off with ease. It results in white ear/white head during the reproductive stage whereby panicles grow out empty or half-filled. The larva can be enclosed within the stem and hence the crop loss can only be realized when internal damage has been done.

2.1.3 Brown planthopper (*Nilaparvata lugens*)

2.1.3.1 Nature of damage: Heavy infestation of rice leaves the plant drying, yellowing, and finally hopper burn where nymphs and adults suck sap at the base of rice tillers weakening the plants. They also give honeydew, which prefers sooty mould, and are significant vectors of diseases of the rice grassy stunt and rice ragged stunt, and are therefore particularly destructive.

2.1.3.2 Challenges in sustainable rice pest management: The yellow stem borer is also challenging to manage as the larvae remain safe in the tissue of the plant and therefore the damage may be detected when it is too late and the sprays may fail to hit the target. Brown planthopper is not any easier since abundant canopy of crops, excess nitrogen, as well as repeated rice plantations, and early use of broad spectrum insecticides are the environmental factors that prefer outbreaks; the insect is also known to resume and develop resistance when overused. All these aspects render regular chemical regulation unreliable and ecologically dangerous (Garg *et al.* 2026).

2.1.3.3 Sustainable management of rice pests (IPM): Apply synchronous planting, field hygiene, post harvest destruction of stubbles, clipping of seedling ends prior to transplantation in order to destroy egg masses of the stem borers, balanced fertilizer application and preventance of over-applied nitrogen. In the case of yellow stem borer, pheromone traps should be used in monitoring/mass trapping and ensuring the preservation/ increase in natural enemies. In the case of brown planthopper, there is no need to have early insecticide sprays when they are unnecessary, proper spacing, intermittent drainage where possible and preservation of predators like spiders and other useful insects. The central issue here are resistant or tolerant varieties and regular field scouting as a part of sustainable management with the usage of chemicals on the last level and under the conditions of reaching economic threshold levels.

2.2. Wheat pest

The insect pests causing damage in wheat crops are mentioned in Table 2.

Table 2. Major pests of Wheat

Sr. No.	Common Name	Scientific Name	Order	Family
1.	Wheat Aphid	*Macrosiphum miscanthi*	Hemiptera	Aphididae
2.	Cut worm	*Agrotis ipsilon*	Lepidoptera	Noctuidae
3.	Termites	*Odontotermes obesus*	Isoptera	Termitidae
4.	Gram Pod Borer	*Helicoverpa armigera*	Lepidoptera	Noctuidae

2.2.1 Wheat aphid (*Macrosiphum miscanthi / Sitobion miscanthi*)

2.2.1.1 Nature of damage: Termites invade wheat immediately after planting until later in the growth of crops. They nourish on roots and the underground stems making the seedlings to wither and the affected plants easy to pull. In subsequent attacks, the injured plants can result into white ears or poorly filled ears. In rainfed, sandy, dry fields and when there is presence of undecomposed FYM/crop residues, infestation is normally more intense.

2.2.2 Termite (*Odontotermes obesus*)

2.2.2.1 Nature of damage: Termites invade wheat immediately after planting until later in the growth of crops. They nourish on roots and the underground stems making the seedlings to wither and the affected plants easy to pull. In subsequent attacks, the injured plants can result into white ears or poorly filled ears. In rainfed, sandy, dry fields and when there is presence of undecomposed FYM/crop residues, infestation is normally more intense.

2.2.2.2 Challenges in sustainable wheat pest management: Wheat pest management is difficult because pest outbreaks are strongly influenced by weather, sowing time, irrigation, and crop nutrition. Aphids can multiply very rapidly and can develop insecticide resistance; broad-spectrum sprays can also disrupt predators and parasitoids, leading to resurgence. For termites, hidden subterranean feeding makes early detection difficult, especially under dryland conditions. At the system level, IPM adoption is often limited by farmer awareness, labor requirements, and the complexity of combining monitoring, cultural practices, biological control, and threshold-based decisions.

2.2.2.3 Sustainable management of wheat pests (IPM approach): Begin with the process of timely sowing, deep summer ploughing, and destruction of the residues of crops and the application of well-decomposed FYM only. Always keep the proper irrigation since water stress is more inclined to termite harm and never overly utilize nitrogen as succulent crop plants attracts aphids. Scouting should be done regularly; NIPHM suggests to do aphids surveillance after every week, count aphids on the selected leaf/plants, and monitor aphids on the yellow sticky traps. A major sustainable measure is conservation of natural enemies like ladybird beetles, lacewings, syrphids and parasitoids, hence the avoidance of unnecessary sprays of insecticides. The pest pressure could also be minimized with the help of border crops and ecological engineering.

2.2.2.4 Pest-specific sustainable management: In the case of aphids sporadic checking is the initial stage, and control should be taken on the basis of threshold levels as opposed to habitual spraying. Population of aphids Correspondingly, an ICAR rabi advisory notifies of intervention when aphid population is over approximately 10 aphids on each tiller or 5 on each earhead. Another recommendation NIPHM gives is yellow sticky traps and conservation of natural

enemies; chemical control should be based on need only, and based on local extension/label recommendations.

In the case of termites, preventive and cultural measures are of particular importance: deep summer ploughing, destruction of residue, only well-rotted FYM, sowing on time, sufficient moisture in the soil. Other recommendations made by NIPHM include breaking down termite piles around fields and applying neem cake as one of the biological/organic support measures. Treatment of the seeds and need-based intervention in a study of the Indian fields also enabled a parsimonious IPM equilibrium between the crop and termite damage than normal practice of farmers.

2.3 Maize Pest

Table 3. Major pests of Maize

Sr.No.	Common Name	Scientific Name	Order	Family
1.	Stem borer	*Chilo partellus*	Lepidoptera	Pyralidae
2.	Corn worm/ ear worm	*Helicoverpa armigera*	Lepidoptera	Noctuidae
3.	Aphid	*Rhopalosiphum maidis*	Hemiptera	Aphididae
4.	Maize shoot fly	*Atherigona orientalis*	Diptera	muscidae

2.3.1 Stem borer-*Chilo partellus*

2.3.1.1 Nature of damage: Young larvae consume the tender folded leaves and generate the common symptom, which is the shot hole. They infest upon the stem as they grow and feed on the internal tissues, resulting into a dead heart, drying the central shoot and bore holes and tunneling of the stem, making them visible. Management problems: This pest is not easy to control since once the pests have developed in the stem they are shielded by the plant tissue and therefore they are inaccessible to external sprays. The damaging insect also thrives on crop stubbles and hibernation phases in the field that assist in spreading infestation to the next season. That is why delayed control is not normally effective as compared to preventive IPM (Kumar *et al.* 2025).

2.3.1.2 Sustainable management: Sustainable IPM method involves deep summer ploughing, intercropping legumes like maize–soybean, maize–cowpea or maize-green gram, planting of so-called tolerant varieties of stem borers, clearing of dead hearts, and clearance of stubbles after harvesting. NIPHM also suggests that natural enemies like *Trichogramma chilonis* and *Cotesia flavipes* should be conserved and *T. chilonis* @ 1,60,000/ha should be released on crop 7- and 15-day-old where necessary.

2.3.2 Corn worm / earworm – *Helicoverpa armigera*

2.3.2.1 Damage nature: The larva feeds on silk, and develops grains, and cobs, and holes may be observed on the cob. This feeding has a direct negative impact of grain formation and ear quality.

2.3.2.2 Management problems: The management of larvae is a challenge since the larvae infest ear area where they can feed on silk and the kernels may be damaged prior to any visible damage, and the partial protection provided by the cob area to the caterpillar. Also, *Helicoverpa* is a very versatile polyphagous pest, therefore alone use of routine insecticides is not a permanent measure. What is wanted is integrated control through monitoring.

Sustainable management: the more sustainable options for maize include light traps, sex pheromone traps (12/ha), and 2 applications of NPV, separated by 10 days. Egg parasitoids of *Helicoverpa* in maize systems, such as *Trichogramma* and *T. mwanzai*, are also documented in NIPHM; therefore, caution is necessary in IPM to conserve natural enemies and avoid unnecessary use of broad-spectrum sprays.

2.4 Cotton pest

2.4.1 American bollworm – *Helicoverpa armigera*

2.4.1.1 Nature of damage: Squares, flowers and bolls are fed upon by the larvae. Common signs are regular circular bore holes on the bolls, granular faecal pellets exterior to bore hole, and

Table 4. Major insect pests of cotton

Sr. No.	Common Name	Scientific Name	Order	Family
1.	Leafhopper	*Amrasca biguttula biguttula*	Hemiptera	Cicadellidae
2.	Pink boll worm	*Pectinophora gossypiella*	Lepidoptera	Gelechiidae
3.	Americal boll worm	*Helicoperva armigera*	Lepidoptera	Noctuidae
4.	Whitefly	*Bemisia tabaci*	Hemiptera	Aleyrodidae

consumption of the internal contents of the boll, which has a direct negative impact on yield and quality of boll.

2.4.1.2 Sustainable management: Adhere to an IPM strategy where sowing is done in time, cleaning of the field, eliminating remnant of crops, proper application of fertilisers and unnecessary spraying of pesticides. Monitoring with pheromone traps, natural enemies conservation and enhancement of biological control with *Trichogramma*, *Chelonus blackburnii*, *Chrysoperla* and NPV. Need based control must not be taken before monitoring but calendar spraying.

2.4.2 Pink bollworm – *Pectinophora gossypiella*

2.4.2.1 Nature of damage: The larvae penetrates flower buds and bolls and feeds within. Key symptoms include rosetted flowers, excreta at the entry point, interlocular burrowing, the development of the two seeds, the shedding off of the attacked buds and immature bolls and discoloured lint containing burrowed seeds.

2.4.2.2 Sustainable management: Sustainable management is based on early monitoring by the use of pheromone traps, destruction of residues of crops and infested parts of plants, rotation of crops, deep summer ploughing, timely sowing, with adequate spacing, and balanced nutrient management. Field monitoring through biological control and IPM are relevant and trap-based threshold decision-making is used to prevent the recurrence of the usage of broad-spectrum insecticides.

2.5 Pulse Pest

2.5.1 Gram pod borer (*Helicoverpa armigera*)

2.5.1.1 Nature of damage: It is a pigeonpea pest that is one of the most devastating pod-feeders. At the initial stage, the larvae consume foliage and may result in defoliation. When the crop starts flowering and forming pods the caterpillar changes to buds, flowers, and pods. One of the common symptoms of this field is that the larva just penetrates the pod with the head and the rest of the body outside where it feeds on the grains that are growing. The damaged pods are characterized by holes in the form of rounds and the growing seeds are either partially or totally consumed, which directly reduces the grain production and the quality in the markets.

2.5.1.2 Sustainable management: The sustainable control is supposed to be based on IPM approach instead of the frequent routine spraying. The cultural practices that are useful are; pigeonpea should be intercropped with 1 row of sunflower to every 9 rows, maize should be used as a border crop which helps to disturb movement and reduce attack of the pests. Pheromone traps should be monitored and insectivorous birds are attracted with the help of bird perches that feed on larvae. In small or medium fields, it can also be effectively used to collect visible grown-up larvae hand. Biological indicators matter: HaNPV is preferred by TNAU, whilst ICRISAT focuses on weekly post-flower-initiation observation, neem-based sprays like neem fruit extract/NSKE and action on demand rather than the calendar sprays. Sustainable management involves the conservation of spiders and other natural enemies.

2.5.2 Pod fly (*Melanagromyza obtusa*)

2.5.2.1 Nature of damage: The harmful phase is the maggot. It pierces through the pod wall and is nourished on the seed that is growing. The usual symptoms include dark brown encrustation of the pod wall, dry pods with their pinhead holes, shriveled and striped half-eaten seeds. Damages can be missed because feeding takes place in the pod and pods are not opened up. The damaged grains are not only not consumable but also not germinable and losses might be very high in case of excessive infestation.

2.5.2.2 Sustainable management: The most practical one is early detection and preservation of natural enemies. The TNAU particularly recommends the

Table 5. Major insect pest of pulse crops

Sr.No.	Common Name	Scientific Name	Order	Family
1.	Gram pod borer	*Helicoverpa armigera*	Lepidoptera	Noctuidae
2.	Pod fly	*Melanagromyza obtusa*	Diptera	Agromyzidae
3.	Spotted pod borer	*Maruca testulalis*	Lepidoptera	Pyralidae
4.	Plume moth	*Exelastis atomosa*	Lepidoptera	Pterophoridae

protection of parasitoids *Euderus lividus*, *Eurytoma* sp. and *Euderus agromyzae*. As pod fly is a routine endemic pest in pigeonpea, ICRISAT suggests its treatment as part of a larger IPM system which incorporates field monitoring, prevention-first management, and minimal disturbance of useful insects. Cultural sanitation, observing of crop on time when the pods form and the use of unnecessary broad-spectrum insecticides is important since the natural biological control is preserved. Where there is serious infestation, intervention should be based on need instead of being the starting point and it should be incorporated with the other IPM package.

References

Conde S, Catarino S, Ferreira, S, Temudo MP and Monteiro, F (2025). Rice pests and diseases around the world: Literature-based assessment with emphasis on Africa and Asia. *Agriculture*, 15(7): 667.

Singh G and Joshi NK (2025). Insect pests of wheat in north India: A comprehensive review of their bio-ecology and integrated management strategies. *Agriculture*, 15(19): 2067.

Garg S, Gupta D, Punetha H (2026). Comprehensive utilization of mustard seed meals: phyto-chemical composition, feed applications, and economic pest management strategies. *European Food Research and Technology*, 252(2): 56.

Mythili B, Pavan T, Singha A, Keerthika N and Ghosh SK (2020). Sustainable Management of Pests Infesting Rapeseed and Mustard Crops. Plant Science Today, 14(2): 13-34.

Kumar R, Paul D, Singh S, Meena RS, Jakhar, A, Kaur J and Kumar V (2025). Integrated Insect-Pest Management in BG-II cotton after threatening appearance of Pectinophora gossypiella (Saunders). *International Journal of Tropical Insect Science*, 45(3): 975-988.

कविता

अंधेरा भी देता है रौशनी

राणा प्रताप सिंह

जब जंगल घने थे
और पेड़ों की छाँव में घनी हरियाली थी
तो लोग दौड़ते रहते पहाड़ों के आर पार
मजबूत दिल, ऑक्सीजन से भरी हुई साँसे
और बलिष्ट हौसलों के साथ

जब जंगल कटने लगे
रौशनी फैलने लगी बाहर
हरियाली के आर पार
तो अँधेरा लोगों के मन में जगह ढूढ़ने लगा
जैसे साँप, बंदर, भेड़िए, चीते और शेर
गाँव और शहर को

तब मन में रौशनी थी और सूरज में उजाला
दीये जले न जलें
रौशन थी संबंधों की डोर
दीवाली अब रौशन करती
दीयों के आलोक से
घर–बार, रास्तों और चौराहों को
अँधेरा जंगल से निकल कर
मन में आ गया है, रहने

बाहर–बाहर सब नष्ट होता गया
और समानों की भीड़ में
उलझा रहा मेरा मन

17 जून, 2026

मकान नं0 247, सेक्टर–2, उद्यान–2, एल्डिको, रायबरेली रोड, लखनऊ–226025
ईमेल : dr.ranapratap59@gmail.com

Agriculture

Peer Reviewed

Special Section : Agricultural Environment

Pesticide Toxicity Across Ecosystem: Impact, Risks and Mitigation Strategies

Shivangi Maheshwari[1]*, Vijay Laxmi Rai[2], Vinod Kumar[3] and Aradhya Raj[1]

Abstract

Pesticides are commonly used in modern farming to boost crop yields and keep pests away. However, their widespread use has raised serious questions about their safety for people and the environment. Pesticide residues can enter ecosystems and affect organisms that aren't the target, as well as important physiological systems like energy metabolism, the nervous system, the cardiovascular system, and the endocrine system. These disruptions lead to a range of negative effects, such as metabolic disorders, malnutrition, inflammation, neurotoxicity, and a greater risk of getting sick from infections. Pesticides also have cumulative effects across different levels of the food chain, putting biodiversity and ecosystem stability at risk. Finding sensitive biomarkers, such as biochemical and haematological indicators, is a promising way to monitor pesticide toxicity and the health of the environment. Future mitigation strategies should focus on creating more selective pesticide formulations, using cutting-edge technologies to keep food and goods from getting contaminated, and using sustainable farming methods. These steps are all necessary to achieve a balance among farming productivity, environmental protection, and public health.

Key Words: Pesticide toxicity, Biomarkers, Ecosystem health, Environmental contamination, non-target organisms, Sustainable agriculture, Mitigation strategies

1. Introduction

Pesticides are chemical compounds or biological agents designed to lure, eradicate, eliminate, or reduce pests. Their primary use is in agriculture, where they safeguard crops against insects, weeds, and bacterial or fungal infections in the process of cultivation. Additionally, they also preserve stored food by protecting it from rodents, insects, and other biological contaminants (Bolo gnesi and Merlo, 2011). Pesticides hold a distinctive place among synthetic chemicals commonly encountered routine life; they are present across nearly all regions of the world. Those released through human activities may contaminate water bodies via surface runoff, leaching, or erosion (Khan and Law, 2005). Through processes such as drift, evaporation, and wind erosion, pesticide residues may be transported into the atmosphere. Once airborne, they can return to the environment with precipitation, contaminating surface waters, soils, plants, and animals.

2. Environmental Persistence of Pesticides

As pesticides enter the environment, eco-toxicology has grown crucial for safeguarding the environment. Even with good farming practices, pesticides may disturb natural equilibrium and cause ecological changes. Although pesticide problems are usually tied to farming and forestry, they also contaminate urban waste water from weed control along roads, railways, gardens, parks, and woodlands. Different effects of pesticides on organisms make environmental risk assessment complex. Harmful effects in target organisms are often hidden, appearing only after long-term exposure, by which time damage may be irreversible (Van der Oost *et al.*, 2003). Pesticides accumulate in living organisms over time, many of which are used to study their toxic effects.

2.1 Pathways and circulation of pesticides across ecosystems and environmental compartments: The environmental fate of a contaminant is governed by diverse physical, chemical, and biological processes, which influence both its transformation and its interactions with various components of the ecosystem.

[1]*Department of Entomology, College of Agriculture, Acharya Narendra Deva University of Agriculture & Technology, Kumarganj, Ayodhya-224229 Uttar Pradesh, India*
[2]*Department of Entomology, College of Agriculture Campus, Kotwa, Azmgarh, Uttar Pradesh*
[3]*Department of Seed Science and Technology, College of Agriculture, Acharya Narendra Deva University of Agriculture & Technology, Kumarganj, Ayodhya-224229 Uttar Pradesh*
**Corresponding author email : shivangimaheshwari025@gmail.com*

Additional pathways of pesticide entry into the environment include direct application, atmospheric drift, deliberate disposal, improper preparation, and leaching into groundwater. Once chemicals enter ecosystems, they undergo diverse transformations influenced by their inherent physical and chemical properties as well as their interactions with surrounding environmental components.

3. Common Indicators of Pesticide Toxicity

Since it is not feasible to track every human-induced factor that could threaten the environment, the most effective way to evaluate overall environmental quality is to study biochemical reactions in organisms. These responses reveal how contaminants may disrupt normal physiological functions in exposed species. When pesticides enter an organism, they may undergo metabolic transformations that can alter the manifestation of their toxic effects. Consequently, the identification of suitable biomarkers for pesticide-induced toxicity should encompass both general indicators of organismal health and specific parameters selected in accordance with the pesticide's mode of action. Although haematological parameters such as haematocrit, haemoglobin levels, and protein or glucose concentrations are generally considered nonspecific, they can nonetheless serve as sufficiently sensitive indicators of certain pollutant exposures. Accordingly, these measures may be regarded as potential biomarkers for assessing pesticide toxicity (Husak *et al.*, 2014) as discussed in Table 1.

4. Trophic Transfer and Bioaccumulation of Pesticides within Ecological Food Networks

Pesticides persist in ecosystems and accumulate over time, making them widespread pollutants. Their residues are found across different biological samples of test organisms. (Bolognesi and Merlo, 2011). Because of the complex interactions among organisms in food webs, insights into pesticide transfer and bioconcentration through diet are critical for evaluating their true environmental consequences. Bioconcentration broadly refers to the process through which pesticides enter and accumulate within organisms. Bio-concentration processes are primarily influenced by three factors:

(i) the physicochemical characteristics of individual compounds,

(ii) the physiological traits of the exposed organisms, and

(iii) the prevailing environmental conditions.

Consequently, pesticide bioconcentration frequently results in bioaccumulation, which is further amplified by dietary uptake through food consumption and sediment ingestion. (Miyamoto *et al.*, 1990) For instance, DDT concentration in organisms arises when its absorption, breakdown, and elimination are not balanced. If for once this pesticide enters aquatic systems, it initially builds up in plankton. Small fish feeding on plankton become contaminated, and larger fish consuming these smaller species also accumulate the chemical. This stepwise transfer causes DDT to

Table 1. Classification of pesticide and their mode of action

Pesticide Class	Mode of Action (MoA)	Environmental Persistence	Key References
Organochlorines (e.g., DDT)	Opens sodium channels in nerve cells, leading to hyperexcitation and death.	Extremely persistent; lasts for decades in soil and water, accumulating through the food chain.	NPIC (1999)
Organophosphates(e.g., Malathion)	Blocks acetylcholinesterase, leading to excess acetylcholine and continuous nerve stimulation.	Moderately persistent; breaks down within weeks to months through hydrolysis and sunlight.	Thapa *et al.* (2022)
Pyrethroids(e.g., Cypermethrin)	Mimics natural pyrethrins; delays the closing of sodium channels in axonal membranes.	Moderately persistent; binds tightly to soil, degrades in weeks, harmful to aquatic organisms.	Ahmad *et al.* (2024)
Neonicotinoids(e.g., Imidacloprid)	Acts as an agonist to nicotinic acetylcholine receptors, blocking nerve impulses.	Moderate to high persistence; systemic in plants, remains in soil for months to years based on conditions.	Tudi *et al.* (2021)
Carbamates(e.g.Carbaryl)	Reversibly inhibits acetylcholinesterase, similar to organophosphates but less permanent.	Low persistence; degrades within ays days to weeks in the environment.	Lewis *et al.* (2016)
Avermectins(e.g., Abamectin)	Activates glutamate -gated chloride channels, causing paralysis.	Low persistence; quickly breaks down by light on leaves or soil.	Ahmad *et al.* (2024)

magnify along food chains, ensuring its persistence within them.

4.1 Assimilation and breakdown of pesticides during biological processes

Organisms can absorb pesticides through multiple pathways. Variations in metabolic processes and physiological traits cause species, strains, and individuals to differ significantly in their sensitivity to these chemicals. Aquatic species can take up dissolved chemicals directly from the surrounding water through respiratory structures such as gills, across the body surface, or by consuming contaminated food, suspended matter, or sediments. In contrast, terrestrial animals typically absorb pesticides via the skin, respiratory passages, or gastrointestinal lining. Regardless of the route of entry, pesticides are ultimately transported to the liver, which serves as the principal site for their bio transformation. Here, detoxification processes convert them into water-soluble compounds that can be excreted. Yet, the liver's intense oxidative activity also renders it vulnerable to harmful metabolites generated during the breakdown of certain xenobiotics. The kidney functions as a secondary detoxification organ, largely due to its substantial blood flow and capacity to concentrate and metabolize pesticides, making it a frequent site of xenobiotic-induced toxicity. In contrast, mechanisms of xenobiotic detoxification within the central nervous system remain poorly understood, though numerous studies have established strong links between organophosphorus exposure and the onset of neurotoxicity. Biotransformation plays a central role in regulating pesticide bioconcentration, bioaccumulation, and detoxification. Williams (1959) proposed that xenobiotic metabolism typically occurs in two sequential stages, now recognized as phase I and phase II detoxification reactions, which act together to promote pesticide elimination.

Conclusion and Future Perspective

Pesticides exert profound effects on host physiology, influencing energy metabolism as well as the nervous, cardiovascular, and endocrine systems through both direct and indirect mechanisms. Their impact has been associated with the onset of numerous pathological conditions, including metabolic syndrome, malnutrition, atherosclerosis, chronic inflammation, increased vulnerability to pathogenic invasion, neurotoxicity, and heightened susceptibility to infectious diseases. Future research should prioritise strategies to reduce or eliminate the adverse effects of pesticides on non-target organisms. Efforts must also focus on the development of more selective pesticide formulations and the application of advanced technologies to minimize contamination of food products and other goods.

References

Ahmad M.F, Ahmad FA, Alsayegh AA, Zeyaullah M, AlShahrani AM, Muzammil K and Hussain S (2024) Pesticides impacts on human health and the environment with their mechanisms of action and possible countermeasures. *Heliyon*, 10(7): e29128.

Bolognesi C and Merlo FD (2011). Pesticides: human health effects. In: Nriagu JO (eds.): Encyclopedia of environ mental health. Burlington: Elsevier. pp 438-53.

Husak VV, Mosiichuk NM, Maksymiv IV, Sluchyk IY, Storey JM, Storey KB and Lushchak VI (2014). Histopathological and biochemical changes in goldfish kidney due to exposure to the herbicide Sencor may be related to induction of oxidative stress. *Aquatic Toxicology*, 155: 181-189.

Khan ZM and Law FCP (2005). Adverse effects of pesticides and related chemicals on enzyme and hormone systems of fish, amphibians and reptiles: A review. *Proceeding of Pakistan Academy Science*, 42: 315-23.

Lewis KA, Tzilivakis J, Warner DJ and Green A (2016). An international database for pesticide risk assessments and management. *Human and Ecological Risk Assessment: An International Journal*, 22(4): 1050–1064.

Miyamoto J, Mikami N, Takimoto Y (1990). The fate of pesticides in aquatic ecosystems. In: Hutson DH, Roberts TR (eds): Progress in pesticide biochemistry and toxicology, environmental fate of pesticides. New York: Wiley. pp 123-47.

National Pesticide Information Center. (1999). DDT Fact Sheet. https://npic.orst.edu/factsheets/ddtgen.pdf

Thapa R, Nainabasti A, Lamsal A, Malla S, Thapa B, Subedi Y and Ghimire S (2022). Pesticide Persistence in Agriculture and its hazardous effects on Environmental Components. *International Journal of Applied Sciences and Biotechnology*, 10(2): 75–83.

Tudi M, Daniel Ruan H, Wang L, Lyu J, Sadler R, Connell D, Chu C and Phung DT (2021). Agriculture Development, Pesticide Application and Its Impact on the Environment. *International Journal of Environmental Research and Public Health*, 18(3): 1112.

Van der Oost R, Beyer J and Vermeulen NP (2003). Fish bioaccumulation and biomarkers in environmental risk assessment: a review. *Environmental Toxicology and Pharmacology*, 13: 57-149.

Williams, RT (1959). Detoxication mechanisms. The metabolism and detoxication of drugs, toxic substances and other organic compounds. Plant Science Today, 21: 11-27.

प्रकृति और संस्कृति

प्रकृति–संस्कृति समृद्धि के भू–सांस्कृतिक मानचित्र से सनातन विकास का रास्ता

जलपुरूष राजेन्दर सिंह

14, 15 और 16 नवम्बर 2025 को नई दिल्ली स्थित इंडियन नेशनल साइंस एकेडमी (इंसा) में भू–सांस्कृतिक मानचित्र के माध्यम से भारत के सनातन विकास की योजना पर तीन दिवसीय संवाद आयोजित हुआ था। इस सम्मेलन में तीन दिनों के विचार–विमर्श के दौरान भारत के 86 भू–सांस्कृतिक क्षेत्रों की पहचान की गई। प्रकृति और संस्कृति के समन्वय से भारत का भू–सांस्कृतिक मानचित्र तैयार किया गया। इसके साथ ही भारत को 50 भौतिक–भौगोलिक क्षेत्रों में देखा गया तथा 15 कृषि–पारिस्थितिक एवं मानसूनी क्षेत्रों के समन्वय से भारत के व्यापक क्षेत्रों को समझने का प्रयास किया गया। ये तीनों ही मानचित्र प्रकृति और संस्कृति के योग से निर्मित भू–सांस्कृतिक दृष्टि को सामने रखते हैं।

इन भू–सांस्कृतिक क्षेत्रों के निर्धारण और प्रमाणीकरण के लिए देश के विभिन्न क्षेत्रों में चर्चा एवं अध्ययन के बाद एक समिति का गठन किया गया। इस समिति की अध्यक्षता प्रो. के.एल. श्रीवास्तव जी ने की, जो भारत के वरिष्ठ भूवैज्ञानिक रहे हैं और पाँच विश्वविद्यालयों के कुलपति भी रह चुके हैं। उनके साथ प्रोफेसर राणा प्रताप, प्रोफेसर मालविका, दिल्ली विश्वविद्यालय तथा कई अन्य वैज्ञानिकों को शामिल किया गया।

सम्मेलन के निर्णयों को आगे बढ़ाने और उनके क्रियान्वयन के लिए दूसरी समिति का गठन किया गया। इसका नेतृत्व जलपुरुष राजेंद्र सिंह ने किया। इन दोनों समितियों के बीच प्रमाणीकरण और फॉलो–अप के समन्वय की जिम्मेदारी श्री पुनीत कुमार, एसोसिएट प्रोफेसर, अनंत विश्वविद्यालय, अहमदाबाद को दी गई। दोनों समितियों ने अपने–अपने स्तर पर विभिन्न कार्यक्रम आयोजित कर इस कार्य को आगे बढ़ाया।

सबसे पहले तरुण भारत संघ में 6 से 11 जनवरी 2026 तक तरुण आश्रम, भीकमपुरा अलवर राजस्थान में देशभर के 50 विद्यार्थियों के साथ एक सप्ताह का कार्यक्रम आयोजित किया गया। इसमें भू–सांस्कृतिक मानचित्र के आधार पर आठ प्रमुख आयामों– भूविज्ञान, जलविज्ञान, खेती, संस्कृति, सामाजिक एवं आर्थिक जीवन, पर्यावरण, जलवायु और राजनीति को समग्र रूप से जोड़कर किसी क्षेत्र को समझने और उसके मानचित्र को देखने योग्य तथा उपयोगी बनाने का प्रयास किया गया।

इस कार्यक्रम की सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि इसमें शामिल 50 प्रतिभागी देश के 50 अलग–अलग भौतिक–भौगोलिक क्षेत्रों से आए थे। इन सभी को भू–सांस्कृतिक मानचित्र के अनुसार जोड़ने और उनके अनुभवों को एक समग्र तंत्र में समझने की प्रक्रिया विकसित की गई। इसके बाद तरुण भारत संघ ने 31 जिलों में 22 भू–सांस्कृतिक क्षेत्रों का अध्ययन और मानचित्रण किया। इस मानचित्रण के आधार पर प्रमाणीकरण का कार्य भी किया गया, ताकि यह देखा जा सके कि प्रकृति और संस्कृति के योग से निर्धारित किए गए 86 क्षेत्रों में वास्तव में एक समान और विशिष्ट भू–सांस्कृतिक चित्र उभरता है या नहीं। साथ ही यह भी समझने का प्रयास किया गया कि स्थानीय प्राकृतिक संसाधनों के आधार पर इन मानचित्रों को देखकर विकास की योजनाएँ किस प्रकार बनाई जा सकती हैं।

इस अध्ययन को और गहराई देने के लिए गुजरात के पाँच अलग–अलग जिलों में पाँच भू–सांस्कृतिक क्षेत्रों का विस्तृत अध्ययन किया गया। उदाहरण के लिए अहमदाबाद के आसपास पाँच गाँवोंकृमणिपुर, भोपाल, घुमा, निंदराई और मोदावी का अध्ययन किया गया। इसी प्रकार राजस्थान के विभिन्न गहरे भू–सांस्कृतिक क्षेत्रों का भी अध्ययन किया गया।

राजस्थान में विशेष रूप से मत्स्य क्षेत्र की अरवरी नदी का ऊपर से नीचे तक अध्ययन किया गया। इसमें यह समझने का प्रयास किया गया कि एक ही भू–सांस्कृतिक क्षेत्र में नदी के ऊपरी और निचले हिस्सों में किस प्रकार के अंतर दिखाई देते हैं। वहाँ की प्रकृति और संस्कृति में समानता होने के बावजूद नदी के प्रवाह के साथ–साथ समाज का प्रवाह और उसका विकास किस प्रकार बनता है, इसका भी गहराई से अध्ययन किया गया।

तरुण भारत संघ, अलवर राजस्थान
ईमेलः paras9338@gmail.com

9 से 15 मार्च तक आठ समूहों में 52 लोगों को विभाजित करके इस क्षेत्र का दस्तावेजीकरण और फिल्मांकन किया गया। इस अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ कि अरवरी नदी क्षेत्र में किए गए विकास कार्यों ने प्रकृति को बिगाड़ने के बजाय उसका पुनर्जनन और पुनर्जीवन किया। इन प्रयासों से निर्माण के साथ–साथ प्रकृति और संस्कृति, दोनों में समृद्धि आई।

सात दिनों के इस विस्तृत अध्ययन के बाद इसके निष्कर्ष एक दस्तावेज के रूप में सामने आए। इसके साथ ही क्षेत्र की जल संरचनाओं का चित्रण किया गया तथा जलवायु परिवर्तन और जल संरचनाओं की स्थिति को समझने के लिए विभिन्न जल–स्रोतों के हेल्थ कार्ड तैयार किए गए। जो जल संरचनाएँ विलुप्त हो चुकी थीं, उनके विलुप्त होने के कारणों और उनकी परिस्थितियों का भी अध्ययन करके उन्हें दस्तावेज में प्रस्तुत किया गया।

मोटे तौर पर इस पूरे भू–सांस्कृतिक मानचित्रण का उद्देश्य ऐसा विकास मॉडल तैयार करना था जो विस्थापन, बिगाड़ और विनाश से मुक्त हो। इसी को हम सनातन विकास या पुनर्जनन आधारित विकास कह सकते हैं। उद्देश्य यह है कि पूरे भारत के लिए ऐसा विकास–डिजाइन तैयार किया जाए जिसमें प्रकृति और संस्कृति के बीच संतुलन बना रहे।

भौगोलिक उपस्थिति

1. शुष्क पश्चिम– माड़ क्षेत्र

थार मरुस्थल के मध्य स्थित जैसलमेर का ''माड़ क्षेत्र'' 22.36 प्रतिशत की गरीबी दर से जूझ रहा है और यहाँ भारत की कुछ सबसे कठोर जलवायु परिस्थितियाँ देखने को मिलती हैं। वर्षा अत्यंत कम और अनिश्चित होती है तथा लोगों की आजीविका काफी हद तक पशुधन पर निर्भर है।

तभासं का मुख्य ध्यान ''सामुदायिक तालाबों, बेरियों, खडीनों और जल टैंकों के निर्माण तथा पुनर्जीवन'' पर है। ये जल प्रणालियाँ मनुष्यों और पशुओंकृदोनों के लिए जीवनरेखा का काम करती हैं। ये पारंपरिक प्रणालियाँ समुदायों को ''पीढ़ियों से विकसित और समय–परीक्षित ज्ञान'' के माध्यम से रेगिस्तानी परिस्थितियों के अनुकूल ढलने में सहायता करती हैं।

2. अर्ध–शुष्क क्षेत्र– मेवात और मत्स्य क्षेत्र

20.93 प्रतिशत की गरीबी दर के साथ, मेवात क्षेत्र मरुस्थलीकरण, भूजल की कमी और लगातार जल संकट से जूझ रहा है। इसके कारण कृषि उत्पादन प्रभावित होता है और गरीबी असमान रूप से बढ़ती है। ''तरुण भारत संघ'' यहाँ जल संरक्षण, घरेलू स्तर पर जल की उपलब्धता, वनीकरण तथा सामुदायिक स्वामित्व वाले जल स्रोतों के पुनर्जीवन के माध्यम से दीर्घकालिक पारिस्थितिक गिरावट को रोकने के लिए कार्य करता है

मत्स्य क्षेत्र में गरीबी दर 18.52: है और यहाँ ग्रामीण आजीविका मुख्य रूप से कृषि एवं पशुधन पर निर्भर है। समय के साथ इस क्षेत्र की पारंपरिक जल निकायों की स्थिति खराब हुई है। तभासं ने जोहड़ों और स्थानीय जल स्रोतों को पुनर्जीवित करके, भूजल पुनर्भरण को बहाल करके तथा कृषि–आधारित आजीविका को मजबूत करके इस क्षेत्र के पुनर्जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

3. नदी किनारे की घाटियाँ– चम्बल क्षेत्र

राजस्थान के सबसे अधिक वंचित क्षेत्रों में से एक चम्बल में गरीबी दर 26. 5: तक है। एक प्रमुख नदी बेसिन के भीतर रहने के बावजूद, यहाँ के समुदायों को स्थानीय जल प्रबंधन, खड्डों के पुनर्जीवन और भूमि क्षरण के कारण गंभीर जल संकट का सामना करना पड़ता है। तभासं नदी बेसिन प्रबंधन, तालाबों के पुनर्स्थापन, जलागम विकास तथा कृषि को टिकाऊ बनाकर आजीविका को स्थिर करने पर ध्यान केंद्रित करता है।



4. राजधानी की छाया–ढूँढाड़ क्षेत्र

जयपुर के निकट होने के बावजूद, ग्रामीण ढूँढाड़ क्षेत्र स्थानीय जल संकट से लगातार जूझ रहा है। जहाँ शहरी गरीबी दर कम है, वहीं ग्रामीण समुदाय घरेलू उपयोग और सिंचाई दोनों के लिए अविश्वसनीय जल उपलब्धता की समस्या का सामना करते हैं।

तभासं इन कमियों को दूर करने के लिए घरेलू स्तर पर वर्षा जल संचयन टैंकों और खेत–तालाबों के माध्यम से कार्य करता है। इससे एक



ऐसे क्षेत्र में आजीविका के प्रति लचीलापन मजबूत होता है, जो राज्य की राजधानी से जुड़े होने के कारण अक्सर उपेक्षित रह जाता है।

ये क्षेत्र हाशिये पर नहीं हैं; बल्कि ये राजस्थान की ''जलवायु संबंधी अग्रिम पंक्ति'' हैं। जहाँ संवेदनशीलता सबसे अधिक है, वहाँ काम करके तरुण भारत संघ यह सुनिश्चित करता है कि जल संबंधी हस्तक्षेप केवल बुनियादी ढाँचे के निर्माण तक सीमित न रहें, बल्कि लोगों की गरिमा बहाल करें, आजीविका को सुरक्षित करें और समुदायों को अपने भविष्य को आकार देने में सक्षम बनाएँ। ''जहाँ जल बहाल होता है, वहाँ लचीलापन बढ़ता है और उसके साथ उम्मीद भी आती है।''

गुजरात और राजस्थान के अध्ययन अब तक पूरे किए जा चुके हैं। राजस्थान के 11 भू–सांस्कृतिक क्षेत्रों में तरुण भारत संघ द्वारा किए गए कार्यों से यह दिखाई देता है कि इन प्रयासों ने विनाश के बजाय पुनर्जीवन और पुनर्जनन को बढ़ावा दिया। विशेष रूप से अरावली पर्वतमाला में एक अलग प्रकार का मॉडल विकसित हुआ। इस मॉडल के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अरावली के संरक्षण और पुनर्जनन के लिए खनन को विकास का आधार बनाना आवश्यक नहीं है। तथाकथित सतत या निरंतर खनन से जितनी आय प्राप्त होती है, उससे कहीं अधिक समृद्धि प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण और उनके पुनर्जनन से आ सकती है।

जब प्रकृति और संस्कृति के साथ मिलकर विकास कार्य किए जाते हैं तो लालच, लूट, शोषण, अतिक्रमण और प्रदूषण जैसी प्रवृत्तियाँ धीरे–धीरे जीवन से कम होती जाती हैं और प्रकृति के प्रति प्रेम बढ़ता है। यही प्रक्रिया हमें स्थायी समृद्धि के रास्ते पर ले जाती है। इसी को हम अपनी बोलचाल की भाषा में 'सनातन विकास' कहते हैं।

सनातन विकास के लिए भू–सांस्कृतिक मानचित्रण आवश्यक है। तरुण भारत संघ ने लंबे समय तक अध्ययन करके इस भू–सांस्कृतिक मानचित्र को विकसित किया है। इसके प्रमाणीकरण के लिए इंसा में वैज्ञानिकों, सामाजिक कार्यकर्ताओं और पर्यावरण विशेषज्ञों के साथ विचार–विमर्श किया गया। इस मानचित्र के माध्यम से भारत को समझने और देखने का एक नया दृष्टिकोण सामने आता है।

भारत को 15 एग्रो–इकोलॉजिकल अर्थात कृषि–पारिस्थितिक एवं जलवायु क्षेत्रों में भी देखा जाता है। इन व्यापक क्षेत्रों के भीतर अनेक अलग–अलग भू–सांस्कृतिक क्षेत्र समाहित होते हैं। इसी प्रकार भारत को 50 भौतिक–भौगोलिक क्षेत्रों में भी विभाजित किया गया है। उदाहरण के लिए अरावली और हिमालय जैसी भू–आकृतियाँ अपने–अपने विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्र हैं। भारत में इन विभिन्न भू–आकृतिक क्षेत्रों को 50 नामों से जाना जाता है। इन 50 भौगोलिक क्षेत्रों को 86 भू–सांस्कृतिक क्षेत्रों के साथ जोड़कर देखा गया और इसी आधार पर तैयार किए गए मानचित्रों का प्रमाणीकरण किया गया।

दूसरी समिति का प्रमुख कार्य इंसा में हुए सम्मेलन के निर्णयों को देशभर के विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों और कृषि संगठनों तक पहुँचाना था। इसके लिए विभिन्न स्थानों पर चिंतन शिविर, संगोष्ठियाँ और कार्यशालाएँ आयोजित करके भू–सांस्कृतिक मानचित्रण की आवश्यकता और उपयोगिता को समझाने का कार्य किया गया।

यह प्रक्रिया पूरी अरावली में लगातार आगे बढ़ाई गई और अरावली क्षेत्र के लिए भू–सांस्कृतिक साक्षरता की एक विस्तृत योजना बनाकर उस पर काम शुरू किया गया। इसी प्रकार पश्चिमी घाट में राजेंद्र पोद्दार ने इस कार्य की जिम्मेदारी लेकर इसे आगे बढ़ाया। विंध्याचल और अन्य क्षेत्रों में भी जल बिरादरी से जुड़े वरिष्ठ एवं पुराने साथियों ने अपने–अपने क्षेत्रों की

Region List

ID_REG	REGION
1	Telangana
2	Kalinga Coastal & Delta Krishna-Godawari
3	Rayalseema
4	63 Tri Vitaran, Missi and Changlang
5	Kamrup
6	Borgai Gaon (Bodo)
7	Aahom
8	Karbi
9	Mishing
10	Lakshadweep Region
11	Maghad - Patliputra
12	Son
13	Gandak
14	Mahanadi
15	Kosi
16	Anga Region
17	Dhandakaranya
18	Mahakaushal
19	Biri
20	Andaman and Nicobar Region
21	Coastal, Hilly and Plateau
22	South Gujarat
23	Kachcha ka Rann
24	North Gujarat
25	Saurashtra
26	Central Gujarat
27	Yamuna Vihar
47	Bundelkhand
48	Satpuda - Narmada Region
49	Malva Region
50	Vidharbha Region

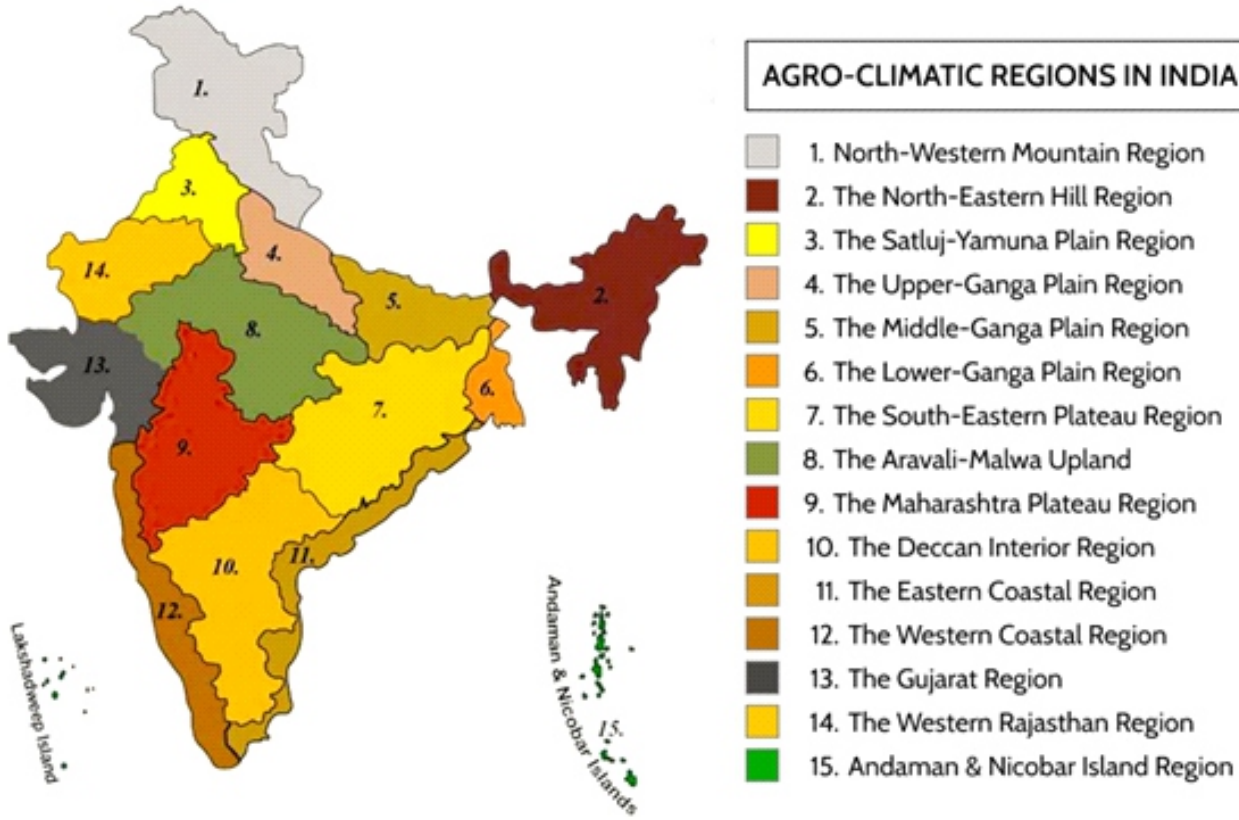
ID_REG	REGION
28	Jatwal
29	Aahirwal
30	Shivalik
31	Cold Desert
32	Himalaya Range (Mahasu)
33	Kashmir Ghati
34	Shivalik
35	Santhala Pargana
36	Koylanchal
37	Central Karnataka
38	Coastal Karnataka/ Malayanad
39	North East Karnataka
40	Pahadi Pathani
41	Doab Region
42	Coastal Kerala
43	Hilly & Plateau Kerala
44	Baghelkhand
45	Nimad Region
46	Bundelkhand - Chambal
51	Central Region
52	Marathwada
53	Khan Desh
54	Coastal Region
55	Madurai Tamil Region
56	Khasi Land
57	Goro Land
58	Mizoram
59	Nagaland

ID_REG	REGION
60	Indraprastha
61	Khandavprastha
62	Parimi Dadiya Region
63	South Region
64	North Region
65	Coastal Dandiya
66	Doaba Region
67	Malva Region
68	Puad Region
69	Thar Region
70	Mewar Region
71	Dhundhar Region
72	Hadoti Region
73	Shekhawati Region
74	Marwar Region
75	Sikkim
76	Coastal Region
77	South Hilly & Plateau Region
78	Tripura
79	Purvanchal & Vindhyanchal
80	Gadwal Region
81	Tarai Region
82	Kumayun
83	Plateau Region
84	Sea Delta Region
85	Tarai & Flat Region
86	Majha Region

जिम्मेदारी लेकर इस कार्यक्रम को आगे बढ़ाया। जलपुरुष राजेंद्र सिंह ने विभिन्न क्षेत्रों में जाकर इस विचार और कार्य को लोगों तक पहुँचाने तथा आगे बढ़ाने का प्रयास किया।

इस पूरे प्रयास का मूल उद्देश्य भारत के विकास को प्रकृति और संस्कृति के समन्वय पर आधारित करना है, ताकि विकास केवल आर्थिक वृद्धि तक सीमित न रहे, बल्कि जल, जंगल, जमीन, खेती, समाज, संस्कृति, पर्यावरण और स्थानीय जीवन–व्यवस्था के पुनर्जनन के साथ आगे बढ़े। भू–सांस्कृतिक मानचित्रण इसी समग्र दृष्टि को समझने, योजना बनाने और पूरे भारत में सनातन विकास का एक व्यवहारिक मॉडल विकसित करने का माध्यम बन सकता है।

AGRO-CLIMATIC REGIONS OF INDIA



व्यक्तित्व

अनूठा उदाहरण

अज्ञात



डॉ. सी. राधाकृष्ण राव साठ वर्ष की उम्र में सेवानिवृत्त हुए और अपनी बेटी व नाती–पोतों के साथ अमेरिका जाकर रहने लगे।

वहाँ 62 वर्ष की उम्र में पिट्सबर्ग विश्वविद्यालय में सांख्यिकी के प्रोफेसर बने और 70 वर्ष की उम्र में पेंसिल्वेनिया विश्वविद्यालय में विभागाध्यक्ष बने।

75 वर्ष की उम्र में उन्हें अमेरिकी नागरिकता मिली।

82 वर्ष की उम्र में उन्हें विज्ञान का राष्ट्रीय पदक और व्हाइट हाउस सम्मान मिला और 102 वर्ष की उम्र में उन्हें सांख्यिकी के नोबेल के समकक्ष अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कार मिला।

भारत सरकार ने उन्हें पहले ही पद्मभूषण (1968) और पद्म विभूषण (2001) से सम्मानित किया था।

राव कहते हैं, भारत में रिटायरमेंट के बाद कोई पूछता नहीं। सहकर्मी भी विद्वता का नहीं बल्कि सत्ता का सम्मान करते हैं।

102 वर्ष की उम्र में उत्तम स्वास्थ्य के साथ नोबेल जैसा सम्मान प्राप्त करना शायद विश्व का पहला उदाहरण है। यह एक ऐसी घटना है जो हमें ताउम्र महत्वपूर्ण कार्य करने की प्रेरणा देती रहेगी।

सेवानिवृत्त होने का मतलब निष्क्रिय हो जाना नहीं है। जीवन का नाम है, आखिरी सांस तक पूरे उत्साह के साथ जीना।

पर्यावरण

कृत्रिम बुद्धिमत्ता बनाम प्रकृतिः अरावली की अस्मिता और हमारे संवैधाानिक दायित्व

जलपुरुष राजेन्दर सिंह

सरकारी तन्त्रों द्वारा इस्तेमाल की गयी कृत्रिम बुद्धिमत्ता से तैयार भारत सरकार के जलवायु परिवर्तन, वन एवं पर्यावरण मंत्रालय के अरावली एफिडेविट को देखकर भविष्य का डर सताता है। अरावली केवल 100 मीटर ऊंची ही है, इससे नीचे पहाड़ नहीं होता, ऐसा एफिडेविट भारत का नागरिक नहीं बना सकता। यह काम तो केवल कृत्रिम बुद्धिमत्ता ही कर सकती है। एफिडेविट में प्रकृति और संस्कृति हेतु स्थान नहीं है। भारत सरकार का अरावली एफिडेविट तो अरावली के माथे पर अभिशाप बन गया है। तब संविधान के अनुच्छेद 21 तथा 48 ए के साथ–साथ भारतीय संविधान का अनुच्छेद 253, जो अंतरराष्ट्रीय संधियों, समझौतों, सम्मेलनों या निर्णयों को प्रभावी बनाने के लिए संसद को शक्तियां प्रदान करता है, हमें स्मरण आता है। इसी से कानून बनाने का अधिकार भी प्राप्त होता है, और इसी के आधार पर हम अंतरराष्ट्रीय दायित्वों को भी पूरा करते रहे हैं।

हमारा देश अंतर्राष्ट्रीय राष्ट्रसंघ और संयुक्त राष्ट्रसंघ के 1992 के वन सिद्धांतों का हस्ताक्षरी है। इसलिए स्वतः ही हम जीवन प्रकृति का पर्यावरण और पहाड़ संरक्षण सिद्धांतों के पालन का आह्वान करते हैं। भारत ने 1992 में उक्त सिद्धांत अपनाए थे। मैं स्वयं भी वर्ष 1992 में रियो डी जनेरो में आयोजित सम्मेलन में भागीदार रहा था। 1991 में फ्रांस में पृथ्वी शिखर सम्मेलन के तैयारी सम्मेलन में बोलने गया था, और दस दिन तक पूरी कार्रवाई का सहभागी रहा। यह वह काल था जब राज्य और न्यायपालिका अपने लोगों की बातें सुनती और मानती थी। पृथ्वी शिखर सम्मेलन 1992 में वनों, वनवासियों और वन्यजीवों के संरक्षण, प्रबंधन, संवर्धन और सतत विकास की अवधारणा का विस्तार हुआ। इसी के अंतर्गत वैश्विक सहमति हेतु सिद्धांतों का आधिकारिक विवरण प्रस्तुत किया गया।

भारत ने विकासशील 77 देशों के समूह के हितों का प्रतिनिधित्व करते हुए वार्ताओं में प्रमुख भूमिका निभाई थी। हमारी 1988 की वन नीति सदैव सभी सम्मेलनों में अत्यंत महत्वपूर्ण रही है और इसी के कारण हम अंतरराष्ट्रीय सम्मेलनों में प्रभावशाली रहे। वनों को बचाने की भारतीय प्रतिबद्धता बहुत गहरी रही है, इसलिए भारत के पहाड़, जंगल और जंगली जीव आज तक बचे रहे हैं।

अब हम अपने संवैधानिक दायित्वों को भूल रहे हैं। हमने उन्हें भुलाया तो हमारे पर्वत और पहाड़ नष्ट होने लगे हैं। अरावली का विनाशकारी मानचित्र बनता जा रहा है क्योंकि हमने अपने प्राकृतिक और सांस्कृतिक चिंतन–मनन को छोड़कर अपना व्यवहार और संस्कार बदल दिया है।

अब हम जीवन के हर व्यवहार में कृत्रिम बुद्धिमत्ता पर निर्भर होते जा रहे हैं। प्रकृति और संस्कृति के संबंध विच्छेद के कारण कृत्रिम बुद्धिमत्ता प्रभावी होकर संपूर्ण जीवन–बोध को नष्ट कर रही है। यदि जंगल, पहाड़, नदियाँ और जीवन को बचाना है तो कृत्रिम बुद्धिमत्ता को जीवन–बोध के नीचे नियंत्रित रखकर ही उपयोग करना होगा। न्यायपालिका के निर्णयों को कृत्रिम बुद्धिमत्ता से मुक्त रखना हमारा संवैधानिक दायित्व है और इसकी पालना होनी चाहिए। वर्तमान में अफसरों द्वारा कृत्रिम बुद्धिमत्ता से तैयार सरकारी एफिडेविट अरावली के संदर्भ में यह आभास कराते हैं कि इनका निर्णयों पर दुष्प्रभाव पड़ेगा। इससे हमें बचना और बचाना है।

कृत्रिम बुद्धिमत्ता जीवनशैली असहायता को संकट में डाल रही है। इससे बचना कठिन नहीं है। इसके लिए प्रकृति और संस्कृति की समझ के साथ जीवन जीना ही होगा। प्रकृति हमारे भावों को प्रगाढ़ करती है, वह हमारी पोषक है। हमें सिखाने वाली है। जबकि कृत्रिम बुद्धिमत्ता हमें नकलची बनाती है। बचपन में भी शिक्षा में नकल को बुरी बात माना जाता था, किंतु अब नकल को मान्यता मिल रही है। बुद्धिमत्ता केवल मान्यता नहीं है, यह इनका सब कुछ बिगाड़ भी सकती है।

हमारी प्रशासनिक गतिविधियों में तेजी से काम होना अच्छा लगता है, परंतु जल्दबाजी घातक हो सकती है। इस समझ के साथ काम करेंगे तो कृत्रिमं पर भी प्राकृतिक प्रभाव बना रहेगा। जीवन सबसे महत्वपूर्ण है इसे

तरूण भारत संघ, अलवर, राजस्थान
ईमेलः jalpurushtbs@gmail.com

सत्य मानकर इसका संरक्षण करना चाहिए। जीवन संरक्षण में कृत्रिम बुद्धिमत्ता की सीमित भूमिका हो सकती है, परंतु जीवन को बचाने के लिए पहाड़ भी हमारे जैसे ही जीवंत अस्तित्व हैं। उनके जीवन को बचाना आवश्यक है। पहाड़ हमारे लिए जलवायु निर्माण करते है। इनके बिना सम्पूर्ण पृथ्वी नहीं बनती है और नहीं चलती है। हमारे शरीर की तर्ज पर पंचमहाभूतों द्वारा निर्मित पहाड़ है। इसे नष्ट करने का काम उंचाई–निचाई में बांटकर नष्ट करने की कोई भारतीस सिफारिश नहीं कर सकता। हम भारतीय पहाडों को भी अपना प्राण–जीवित इकाई मानते है।

अरावली के संदर्भ में भारत सरकार के संबंधित मंत्रालयों ने जो ऐफिडेविट उच्चतम न्यायालय में प्रस्तुत किया है, उसे देखकर लगता है कि, यह मशीनों ने बनाया है। मशीन बड़े कामों को आसानी कर देती है। आजकल कृत्रिम बुद्धिमत्ता से सभी काम होने लगे है। इस ऐफिडेविट को देखकर भी मशीन द्वारा तैयार कराये जैसा ही लगता है। मुझे इस बात की शंका है। मैं सम्मानीय उच्चतम न्यायालय से प्रार्थना करता हूं कि, इस ऐफिडेविट निर्माण प्रक्रिया की जांच कराऐं; आगे ऐसा नहीं होना चाहिए। यदि ऐसा होता है तो



हमारे देश का अहित होगा। सम्मानीय उच्चतम न्यायालय गलतियां होने से पहले ही संवैधानिक दायित्व निभाने हेतु भारत के लोक को न्याय दिलाने का काम करता रहा है। ये अरावली के मामले में ऐसा जरूर करेगा। इसी से भारत के सभी पहाड़ों को बचाने की प्रक्रिया शुरू होगी।

दिनांक 19 अप्रैल 2026, अधिक जानकारी के लिए संपर्क करें (jalpurushtbs@gmail.com, 9009739338 PARAS PRATAP SINGH)

कविता

नदी किनारे गांव है

राणा प्रताप सिंह

चल कर आए बहुत दूर से
नदी किनारे गावं है
पैरों में कंकड़ चुभते हैं
फटी बिवाई पाँव है।

रात दिन दहशत में बीते
कोई चोर कोई साव है

नाविक गया विदेश कमाने
टूटी सी एक नाव है।

वोट सोट सब कहने को है
बड़े –बड़ों का दाव है
पानी यों चढ़ गया घरों में
ज्यों आटे का भाव है।

जाने कौन– कौन आता है
कोई अफसर कोई राव है
पैर कहीं टिकते ही नहीं हैं
रेत के उपर ठावँ है।

"छूटे हुए लोग " से साभार

मकान नं0 247, सेक्टर–2, उद्यान–2, एल्डिको, रायबरेली रोड, लखनऊ–226025
ईमेल : dr.ranapratap59@gmail.com

स्वास्थ्य

शरीर की भाषा

योगेन्द्रसिंह छत्रसिंह झाला

आजकल चौराहे पर जैसे लोग स्वास्थ्य के बारे में सलाह देते हैं, वैसे ही बिना समझे देश की अर्थव्यवस्था economy की चर्चा करते हैं। देश की सुख–समृद्धि के लिए पढ़े–लिखे, शिक्षित राजनेताओं की जरूरत है, लेकिन सामान्य मतदाताओं को सच में अर्थशास्त्र की समझ नहीं है कि देश के जनकल्याण के लिए क्या होना चाहिए। इसलिए यह लेख एक खास उद्देश्य से लिखा गया है और आपकी टिप्पणी की अपेक्षा है।

आपको बुखार आए तो क्या करते हैं? थर्मामीटर देखते हैं न?

BP बढ़े तो मशीन से चेक करते हैं न?

ठीक उसी तरह देश बीमार है या स्वस्थ, यह समझने के लिए भी एक हेल्थ रिपोर्ट होती है। उसका नाम है Macro Economics Indicators.

इस लेख में हम 18 ऐसे आँकड़े समझेंगे जो देश की असली सेहत दिखाते हैं। कोई जटिल फॉर्मूला नहीं, सिर्फ रोजमर्रा के उदाहरण और शरीर की भाषा।

GDP देश की शारीरिक शक्ति है

Gross Domestic Product का मतलब है कि देश एक साल में कितना उत्पादन और सेवा देता है। जैसे जिम में आप कितना वजन उठाते हैं, वह आपकी शक्ति बताता है, वैसे ही GDP बताता है कि देश कितना कमाता है और कितना काम करता है। GDP बढ़े तो देश मजबूत बनता है।

Per Capita Income प्रति व्यक्ति पोषण है

GDP को जनसंख्या से भाग देने पर Per Capita Income आती है। यानी हर व्यक्ति औसतन कितना कमाता है। अगर देश की कमाई बढ़े लेकिन जनसंख्या उससे तेजी से बढ़े, तो व्यक्तिगत समृद्धि नहीं दिखती। इसलिए देश सच में अमीर बना है या नहीं, यह इससे समझ आता है।

Living Standard जीवन की गुणवत्ता है

सिर्फ पैसे होने से कोई अमीर नहीं बनता। लोगों को अच्छा खाना, घर, शिक्षा, स्वास्थ्य, अच्छी सड़कें और सुरक्षा मिलती है या नहीं, यही असली Living Standard है। शरीर सिर्फ जिंदा रहे, इतना काफी नहीं है, आराम से जीना चाहिए न? उसी तरह देश के लोगों का जीवन कितना आरामदायक है, यह Living Standard बताता है।

Inflation देश का बुखार है

पिछले साल दूध 70 रुपये था और इस साल 90 रुपये हो गया, यानी महँगाई बढ़ी। जैसे बुखार बढ़े तो शरीर कमजोर पड़ता है, वैसे ही महँगाई बढ़े तो आपके पैसे की कीमत और खरीदने की ताकत घट जाती है। थोड़ी महँगाई ठीक है, लेकिन हद से बढ़े तो परेशानी होती है।

Unemployment शरीर की कमजोरी है

अगर युवाओं के पास काम न हो तो देश की ऊर्जा बर्बाद होती है। जैसे आपको बुखार आए और उठने का मन न करे, वैसे ही बेरोजगारी बढ़े तो अर्थव्यवस्था धीमी पड़ जाती है। रोजगार मतलब शरीर में ऊर्जा।

Exchange Rate रोग प्रतिरोधक शक्ति है

रुपया मजबूत हो तो बाहर से आने वाली महँगाई का सामना कर सकते हैं। रुपया कमजोर पड़े तो पेट्रोल, मोबाइल, इलेक्ट्रॉनिक्स सब महँगा पड़ता है। जैसे इम्यूनिटी कम हो तो जरा सी सर्दी में भी आदमी गिर जाता है, वैसे ही कमजोर रुपया देश को बाहरी असर के लिए संवेदनशील बना देता है।

FDI बाहर से आने वाला विटामिन है

जब Apple, Tesla जैसी विदेशी कंपनियाँ यहाँ फैक्ट्री खोलती हैं तो नई तकनीक, नौकरी और पैसा आता है। शरीर को विटामिन चाहिए, वैसे ही अर्थव्यवस्था को FDI चाहिए। FDI बढ़े तो रोजगार और नए अवसर बढ़ते हैं।

अर्थशास्त्री, आणंद, गुजरात
ईमेलः yczala@yahoo.co.in

Saving Rate बचत और इम्यूनिटी स्टॉक है

आप बुरे समय के लिए बचत करते हैं न? उसी तरह देश की बचत मतलब निवेश और विकास के लिए पूँजी। जितनी बचत ज्यादा हो, उतना देश भविष्य में सुरक्षित रहता है और बड़े प्रोजेक्ट में निवेश कर सकता है।

Interest Rate ब्लड प्रेशर है

RBI ब्याज दर बढ़ाता–घटाता है। ब्याज दर कम हो तो लोन सस्ता पड़ता है और धंधा बढ़ता है। ब्याज दर ज्यादा हो तो महँगाई काबू में आती है लेकिन खर्च धीमा पड़ जाता है। जैसे BP न ज्यादा न कम, बैलेंस में रहना चाहिए, वैसे ही ब्याज दर भी बैलेंस में होनी चाहिए।

Fiscal Deficit सरकार का क्रेडिट कार्ड का कर्ज है

सरकार जितना कमाती है, उससे ज्यादा खर्च करे तो Fiscal Deficit होता है। थोड़ा ठीक है क्योंकि विकास के लिए खर्च जरूरी है। लेकिन हद से बढ़े तो ब्याज का बोझ बढ़ता है और भविष्य की पीढ़ी पर कर्ज आता है।

Current Account Deficit ऑक्सीजन की कमी है

जब हम बाहर से ज्यादा खरीदते हैं और कम बेचते हैं तो CAD बढ़ता है। यानी डॉलर बाहर चला जाता है। जैसे शरीर में ऑक्सीजन कम पड़े तो इंसान थक जाता है, वैसे ही CAD बढ़े तो देश की बाहरी ताकत घटती है।

Forex Reserve इमरजेंसी फंड है

देश के पास पड़ा विदेशी मुद्रा भंडार Forex Reserve कहलाता है। जब कच्चा तेल महँगा हो, युद्ध हो या अचानक डॉलर की मांग बढ़े, तब यह भंडार काम आता है। जैसे हम FD रखते हैं, वैसे ही देश भी इमरजेंसी के लिए डॉलर रखता है।

Repo Rate मेटाबॉलिज्म है

RBI जिस दर पर बैंकों को पैसा उधार देता है, उसे Repo Rate कहते हैं। यह दर बढ़े तो लोन महँगा होता है, लोग खर्च कम करते हैं और महँगाई काबू में आती है। दर घटे तो लोन सस्ता होता है, खर्च बढ़ता है और ग्रोथ बढ़ती है। यह ठीक शरीर के मेटाबॉलिज्म जैसा है जो तय करता है शरीर कितनी तेजी से काम करे।

IIP मांसपेशियों की ताकत है

Index of Industrial Production मतलब फैक्ट्रियाँ, खदानें, बिजली कितना उत्पादन करती हैं। IIP बढ़े तो देश के हाथ–पैर मजबूत हैं, उत्पादन चल रहा है और नौकरियाँ मिल रही हैं।

PMI पल्स है

Purchasing Managers Index मैनेजरों से पूछकर पता लगाता है कि अगले महीने ऑर्डर, उत्पादन और रोजगार बढ़ेंगे या घटेंगे। PMI 50 से ऊपर हो तो देश की पल्स अच्छी है, नीचे हो तो कमजोर है।

CPI और WPI बाहर का बुखार और अंदर का बुखार हैं

CPI मतलब आप और मैं दुकान में जो भाव चुकाते हैं, वह महँगाई। WPI मतलब फैक्ट्री से माल निकलते समय जो भाव होता है। दोनों को देखना जरूरी है, तभी पता चलता है कि महँगाई कहाँ से शुरू हो रही है।

Credit Growth खून का संचार है

बैंक लोगों और धंधे को कितना लोन देते हैं, उसे Credit Growth कहते हैं। लोन अच्छे से बहे तो अर्थव्यवस्था में जोश आता है। जैसे खून न बहे तो शरीर बंद पड़ जाता है, वैसे ही क्रेडिट न बहे तो धंधा रुक जाता है।

Sensex और Nifty मूड और आत्मविश्वास का मीटर हैं

शेयर बाजार निवेशकों के मूड और भविष्य की उम्मीद को दिखाता है। Sensex और Nifty बढ़ें तो लोगों को देश के भविष्य पर भरोसा है। गिरें तो डर या अनिश्चितता है। जैसे इंसान का चेहरा देखकर पता चलता है कि मूड अच्छा है या नहीं, वैसे ही शेयर बाजार देखकर पता चलता है।

सारांश

इस तरह देखें तो GDP शक्ति है, Per Capita Income प्रति व्यक्ति पोषण है, और Living Standard जीवन की गुणवत्ता है। Inflation बुखार है, Unemployment कमजोरी है, और Exchange Rate रोग प्रतिरोधक शक्ति है। FDI विटामिन है, Saving बचत है, Interest Rate BP है, और Forex Reserve इमरजेंसी फंड है। Fiscal Deficit कर्ज है, Current Account Deficit ऑक्सीजन की कमी है, IIP मांसपेशियों की ताकत है, PMI पल्स है, Credit Growth खून का संचार है, और Sensex & Nifty मूड मीटर हैं।

अब जब भी न्यूज में "CPI 6% हुआ", "FDI घटा", "Nifty 25,000 पार" सुनें, तो घबराएँ नहीं। सीधे सोचें कि इससे देश के शरीर में कहाँ बुखार है और कहाँ विटामिन की जरूरत है। आँकड़े समझ लें तो आप सिर्फ दर्शक नहीं रहेंगे, खुद विश्लेषण कर पाएँगे कि देश की सेहत ठीक है या नहीं।

जीवन विज्ञान

काकरोच: जीवविज्ञान से जीवन–दर्शन तक

मनमोहन प्रकाश

प्रकृति कभी–कभी ऐसे जीवों की रचना करती है जो प्रारम्भ में प्रयोगशाला में अध्ययन का विषय होते हैं, पर समय के साथ समाज में प्रतीक बन जाते हैं। काकरोच ऐसा ही कीट–वर्ग का एक जीव है। पृथ्वी पर करोड़ों वर्षों से अपना अस्तित्व बनाए रखने वाला यह प्राणी डायनासोरों से भी पहले का यात्री माना जाता है। उसने जलवायु परिवर्तन देखे, भूगर्भीय उथल–पुथल देखी, सभ्यताओं को जन्म लेते और विलुप्त होते देखा; और आज भी वह हमारे घरों, प्रयोगशालाओं और कल्पनाओं में उपस्थित है।

जीवविज्ञान की दृष्टि से काकरोच कोई असाधारण शक्ति वाला जीव नहीं है। वह न सबसे तेज है, न सबसे शक्तिशाली और न ही सबसे बुद्धिमान। उसकी सबसे बड़ी विशेषता है–अनुकूलन क्षमता। सीमित संसाधनों में जीवित रहना, बदलती परिस्थितियों के अनुसार व्यवहार बदलना, जोखिम को पहचानना और अवसर मिलते ही पुनः सक्रिय हो जाना। यही उसकी जैविक सफलता का आधार है। यहीं से जीवविज्ञान धीरे–धीरे जीवन–दर्शन में बदलने लगता है।

विडंबना यह है कि जिस जीव को भारतीय गृहस्थी ने सदियों तक झाड़ू, चप्पल और कीटनाशकों के संयुक्त अभियान से नियंत्रित करने तथा घर से बाहर ढकलने का प्रयास किया, वही आज डिजिटल संस्कृति में रूपक बनकर लौट रहा है। सोशल मीडिया के युग में काकरोच केवल एक कीट नहीं रहा; वह कभी मीम है, कभी विचार, कभी रणनीति और कभी जीवन–प्रबंधन का प्रतीक।

आज के समय में कुछ लोग कहते दिखाई देते हैं कि सफल वही है जो हर परिस्थिति में स्वयं को बचा ले। सिद्धांतों से समझौता करना पड़े तो कर लो, माहौल बदल जाए तो उसके अनुसार ढल जाओ, प्रश्न कठिन हो जाएँ तो दिशा बदल लो। इस मानसिकता को यदि किसी जीव में खोजा जाए, तो काकरोच उसका सहज प्रतीक बन जाता है और यहीं से जन्म लेता है "काकरोच दर्शन"। कुछ लोग इस दर्शन को सोशल मीडिया पर जन्मी 'काकरोच जनता पार्टी' से उपजा मानते हैं, जिसका न कोई पंजीकरण है, न संविधान, न कोई चुनाव–चिह्न और न ही कोई झंडा।

इसके समर्थक इसे व्यवहारिक बुद्धिमत्ता कहते हैं, जबकि आलोचक इसे अवसरवाद का परिष्कृत रूप मानते हैं। लेकिन इसकी बढ़ती लोकप्रियता को केवल नैतिक पतन कहकर समझा नहीं जा सकता। यह भी समझना होगा कि इसके पीछे कहीं युवा मन की समय के साथ बढ़ती वास्तविक बेचैनियाँ तो नहीं हैं।

इसमें कोई संदेह नहीं कि आज का युवा अनेक समस्याओं के सामने खड़ा है और कई प्रश्नों के उत्तर खोज रहा है, जैसे–क्या केवल परिश्रम पर्याप्त है? क्या प्रवेश और रोजगार देने वाली संस्थाएँ निष्पक्ष हैं? क्या योग्यता और अवसर वास्तव में एक–दूसरे से मिलते हैं? क्या आदर्शों पर टिके रहना हमेशा लाभकारी होता है? आदि।

जब युवाओं को लगता है कि व्यवस्था धीमी है, परिवर्तन कठिन है और परिणाम अनिश्चित हैं; तथा घर से लेकर समाज तक कहीं भी उनका तिरस्कार हो सकता है, उनका उपहास किया जा सकता है, तब वे संघर्ष से पहले अस्तित्व को चुनने लगते हैं। यही वह मनोवैज्ञानिक भूमि है जहाँ वास्तव में काकरोच दर्शन अंकुरित होता है।

इस दर्शन का पहला सिद्धांत है–"अनुकूलन की चरम क्षमता", अर्थात परिस्थितियाँ बदलें तो स्वयं को बदल लो। विचार, भाषा, संबंध और प्राथमिकताएँ आदि सब कुछ परिस्थितिजन्य हो सकता है। समर्थक इसे लचीलापन कहते हैं; आलोचक इसे वैचारिक अस्थिरता।

दूसरा सिद्धांत है–"रणनीतिक उपस्थिति"। काकरोच हर समय दृश्यमान नहीं रहता। वह प्रतीक्षा करता है, छिपता है, अवसर पहचानता है और फिर सक्रिय हो जाता है। आधुनिक सार्वजनिक जीवन में भी यह प्रवृत्ति दिखाई देती है,अर्थात जब समय कठिन हो, मौन रहो; जब परिस्थितियाँ अनुकूल हों, तो विचारधारा सहित पुनः प्रकट हो जाओ।

इस दर्शन का तीसरा महत्वपूर्ण सिद्धांत है–"दृश्यता का महत्व"। काकरोच जंगल का राजा नहीं बनना चाहता; वह केवल अनुपस्थित नहीं होना चाहता। डिजिटल युग ने भी यही

ईमेलः mmpshrivastava@gmail.com

मंत्र दिया है,दिखते रहो, चाहे गहराई कम हो। क्योंकि आज के समय में ज्ञान से अधिक चर्चा और उपस्थिति, सिद्धांत से अधिक दृश्यता, और चरित्र से अधिक पहचान तथा पूछ–परख को महत्व मिलने लगा है।

लेकिन यहीं एक निर्णायक प्रश्न उठ खड़ा होता है, क्या हर प्रकार की अनुकूलन क्षमता बुद्धिमत्ता होती है? जीवविज्ञान में इसका उत्तर संभवतः "हाँ" हो सकता है, पर मानव जीवन–दर्शन में 'नहीं'।

मनुष्य और काकरोच के बीच सबसे बड़ा अंतर केवल बुद्धि नहीं, बल्कि मूल्य भी हैं। मनुष्य केवल जीवित रहने के लिए नहीं जीता; वह अर्थ, न्याय, सौंदर्य, करुणा और आदर्शों की खोज भी करता है। यदि अस्तित्व ही अंतिम लक्ष्य बन जाए, तो साहस अनावश्यक, प्रतिबद्धता मूर्खता और चरित्र जैसे गुण अतिरिक्त बोझ प्रतीत होने लगते हैं।

यहाँ यह भी विचारणीय है कि इतिहास के बड़े परिवर्तन उन लोगों ने नहीं किए जिन्होंने हर समय सुरक्षित कोना खोज लिया; बल्कि परिवर्तन उन लोगों ने किए जिन्होंने जोखिम उठाया, असुविधा स्वीकार की और अपने मूल्यों को बचाए रखा।

इसका अर्थ यह नहीं कि काकरोच से कुछ सीखा नहीं जा सकता। उससे धैर्य सीखा जा सकता है; विपरीत परिस्थितियों में टिके रहने की क्षमता सीखी जा सकती है; विफलताओं के बाद पुनः उठने का साहस सीखा जा सकता है; तिरस्कार को शक्ति में बदलना सीखा जा सकता है। लेकिन उससे यह सीखने से बचना होगा कि जीवन का उद्देश्य केवल छिपते–छिपाते बचते रहना है। अंधेरे में जीवित रहना और प्रकाश की ओर बढ़ना,ये दोनों अलग बातें हैं।

भारत में आज का सबसे बड़ा संकट संसाधनों का नहीं, चरित्र का है; सूचना का नहीं, दिशा का है। यदि कोई समाज केवल जीवित रहने की कला में दक्ष हो जाए और जीने के कारण भूल जाए, तो धीरे–धीरे नागरिक दर्शक बन जाते हैं और विचार केवल मनोविनोद।

इसलिए अंतिम प्रश्न यह नहीं कि काकरोच कितने करोड़ वर्षों से जीवित है और आगे कब तक जीवित रह सकता है। प्रश्न यह है कि मनुष्य अपने भीतर के मनुष्य को कितने समय तक जीवित रख सकता है। क्योंकि सभ्यता की सफलता का माप यह नहीं कि हमने कितनी बार स्वयं को बचाया; बल्कि यह है कि बचते–बचाते हुए हमने अपना विवेक, अपना चरित्र और अपना मनुष्यत्व कितना बचाकर रखा।

हरियाणवी कविता

औरत

रणवीर सिंह दहिया

गाम की नजरां के म्हां कै बस अडडे पै आउं मैं।
कई बै बस की बाट मैं लेट घणी हो जाउं मैं।।

भीड़ चीर कै बढ़णा सीख्या, करकै हिम्मत चढ़णा सीख्या,
लड़भिड़ कढ़णा सीख्या, झूठ नहीं भकाउं मैं।।

बस मैं के के बणै मेरी साथ, नहीं बता सकती सब बात,
भोले चेहरे करैं उत्पात, मौके उपर धमकाऊँ मैं।।

दफतर मैं जी ला काम करूं, पलभर ना आराम करूं,
किंह किहं का नाम धरूं, नीच घणे बताउं मैं।।

डर मेरा सारा इब लिकड़ गया,दिल भी सही होंसला पकड़ गया, जै रणबीर अकड़ गया, तो सबक सिखाउं मैं।।



पी–27, इन्द्रप्रस्थ कालोनी, सोनीपत रोड, रोहतक–124001
ईमेलः dahiyars@rediffmail.com

निवेश

बच्चे के उज्ज्वल भविष्य का सबसे बड़ा निवेश : जीवन के प्रथम 1000 दिन–भविष्य की नींव रखने वाला स्वर्णिम अवसर

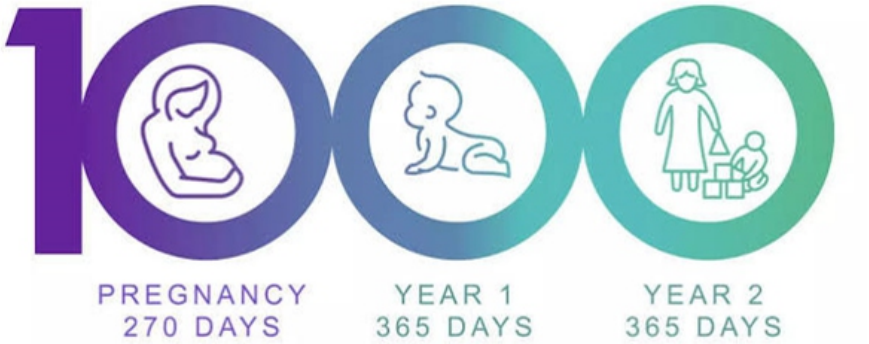
अशीष सिंह

किसी भी व्यक्ति के जीवन में यदि सबसे महत्वपूर्ण समय की पहचान की जाए, तो वह केवल जन्म के बाद का समय नहीं, बल्कि गर्भधारण से ही शुरू हो जाता है। गर्भधारण से लेकर बच्चे के दो वर्ष की आयु तक की अवधि को "जीवन के प्रथम 1000 दिन" कहा जाता है। यही वह समय है जब बच्चे के शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक और सामाजिक विकास की बुनियाद रखी जाती है। विशेषज्ञों के अनुसार, इन शुरुआती 1000 दिनों का प्रभाव व्यक्ति के स्वास्थ्य, सीखने की क्षमता, व्यवहार और भविष्य की संभावनाओं पर जीवनभर बना रहता है।

जीवन के प्रथम 1000 दिनों को तीन महत्वपूर्ण चरणों में समझा जा सकता है–गर्भावस्था के 270 दिन, जन्म से छह माह तक के 180 दिन और छह माह से दो वर्ष तक के 550 दिन। इन तीनों चरणों में परिवार, विशेष रूप से माता–पिता की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है।

गर्भावस्था के 270 दिनः विकास की पहली पाठशाला

बच्चे का विकास गर्भ में ही प्रारंभ हो जाता है। गर्भावस्था के दौरान माँ का पोषण, स्वास्थ्य, मानसिक स्थिति और पारिवारिक वातावरण सीधे तौर पर शिशु के विकास को प्रभावित करते हैं। इसलिए गर्भवती महिला के लिए संतुलित आहार, नियमित स्वास्थ्य जांच, समय पर टीकाकरण तथा आयरन और कैल्शियम की गोलियों का सेवन अत्यंत आवश्यक है।



वैज्ञानिक शोध बताते हैं कि गर्भस्थ शिशु ध्वनियों को सुन सकता है और बाहरी वातावरण के प्रभावों को महसूस कर सकता है। भारतीय परंपरा में भी गर्भकालीन सीखने की अवधारणा का उल्लेख मिलता है। महाभारत के अभिमन्यु की कथा इसका प्रसिद्ध उदाहरण है। इसलिए गर्भवती महिला को प्रेम, सम्मान और सहयोगपूर्ण वातावरण मिलना चाहिए। पिता और परिवार के अन्य सदस्यों द्वारा सकारात्मक संवाद और भावनात्मक सहयोग शिशु के स्वस्थ विकास में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं।

जन्म से छह माह तक के 180 दिनः माँ का दूध और स्नेह सबसे बड़ा पोषण

जन्म के बाद बच्चे के जीवन का दूसरा महत्वपूर्ण चरण आरम्भ होता है। इस अवधि में बच्चे के लिए सबसे आवश्यक है माँ का स्पर्श, माँ का प्यार और माँ का दूध। जन्म के एक घंटे के भीतर स्तनपान शुरू करना तथा पहले छह माह तक केवल माँ का दूध देना सबसे उत्तम माना जाता है। इसे विशुद्ध स्तनपान (Exclusive Breastfeeding) कहा जाता है।

इस दौरान बच्चे को पानी, शहद, घुट्टी या किसी अन्य खाद्य पदार्थ की आवश्यकता नहीं होती। माँ का दूध न केवल सम्पूर्ण पोषण प्रदान करता है, बल्कि बच्चे को संक्रमण और अनेक बीमारियों से भी सुरक्षा देता है। साथ ही, समय पर टीकाकरण बच्चे की प्रतिरक्षा प्रणाली को मजबूत बनाता है और उसे गंभीर रोगों से बचाता है।

छह माह से दो वर्ष तक के 550 दिनः सीखने और विकास की तीव्र गति

छह माह की आयु के बाद बच्चे को माँ के दूध के साथ–साथ पूरक आहार देना शुरू किया जाता है। यह समय बच्चे के तेजी से बढ़ने और सीखने का दौर होता

सेक्टर–जी, अलीगंज, लखनऊ 226024
ईमेलः ashisonu141@gmail.com

है। पौष्टिक भोजन के साथ–साथ बच्चे के साथ खेलना, उससे बातें करना, कहानियाँ सुनाना, गीत और लोरियाँ सुनाना तथा उसे सुरक्षित और प्रेमपूर्ण वातावरण देना अत्यंत आवश्यक है।

अध्ययनों के अनुसार, दो वर्ष की आयु तक बच्चे के मस्तिष्क का लगभग 80 से 85 प्रतिशत विकास हो चुका होता है। यही कारण है कि इस अवधि में मिलने वाले अनुभव उसके पूरे जीवन को प्रभावित करते हैं। जब माता–पिता बच्चे से संवाद करते हैं, उसकी जिज्ञासाओं का उत्तर देते हैं और उसे नए अनुभवों से परिचित कराते हैं, तब उसके मस्तिष्क में नए तंत्रिका संबंध (Neural Connections) विकसित होते हैं। यही संबंध आगे चलकर उसकी भाषा, स्मरण शक्ति, भावनात्मक समझ और सामाजिक व्यवहार की नींव बनते हैं।

इस प्रक्रिया में पिता की भूमिका भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। पिता का समय, संवाद और सहभागिता बच्चे के आत्मविश्वास तथा भावनात्मक सुरक्षा को मजबूत बनाती है।

प्रारंभिक अनुभव क्यों हैं इतने महत्वपूर्ण?

एक छोटे बच्चे का मस्तिष्क कोरे कागज या मुलायम मिट्टी की तरह होता है। जिस प्रकार कुम्हार मिट्टी को आकार देता है, उसी प्रकार शुरुआती अनुभव बच्चे के व्यक्तित्व को आकार देते हैं। यदि बच्चे को पर्याप्त पोषण, सुरक्षा, प्रेम और सीखने के अवसर मिलते हैं, तो उसका विकास बेहतर होता है। इसके विपरीत उपेक्षा, हिंसा, तनाव और कुपोषण उसके विकास को बाधित कर सकते हैं।

वैज्ञानिकों का मानना है कि जीवन के शुरुआती वर्षों में मस्तिष्क सबसे तेजी से विकसित होता है। इसलिए यही वह समय है जब बच्चे के भविष्य की मजबूत नींव रखी जा सकती है।

परिवार और समुदाय की साझा जिम्मेदारी

जीवन के प्रथम 1000 दिन केवल माँ की जिम्मेदारी नहीं हैं। इसमें पिता, दादा–दादी, परिवार के अन्य सदस्य, आंगनबाड़ी कार्यकर्ता, आशा कार्यकर्ता, स्वास्थ्य कर्मी तथा पूरा समुदाय महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। एक स्वस्थ, सुरक्षित और प्रोत्साहन देने वाला वातावरण बच्चे के सर्वांगीण विकास के लिए आवश्यक है।

यदि हम चाहते हैं कि आने वाली पीढ़ी स्वस्थ, शिक्षित, संवेदनशील और सक्षम बने, तो हमें जीवन के प्रथम 1000 दिनों को प्राथमिकता देनी होगी। यह केवल एक बच्चे के भविष्य में निवेश नहीं, बल्कि समाज और राष्ट्र के भविष्य को मजबूत बनाने का सबसे प्रभावी माध्यम है।

जीवन के प्रथम 1000 दिन वास्तव में एक स्वर्णिम अवसर हैं। गर्भधारण से लेकर दो वर्ष की आयु तक दिया गया उचित पोषण, स्वास्थ्य देखभाल, प्रेम, संवाद और सकारात्मक वातावरण बच्चे के सम्पूर्ण जीवन की दिशा तय कर सकता है। इसलिए प्रत्येक परिवार, समुदाय और नीति–निर्माता को यह समझना होगा कि बच्चे का विकास जन्म के बाद नहीं, बल्कि गर्भ से ही शुरू हो जाता है। इन शुरुआती दिनों में किया गया छोटा–सा निवेश भविष्य में बड़े सकारात्मक परिणाम देता है और एक स्वस्थ, खुशहाल तथा सक्षम समाज के निर्माण की आधारशिला बनता है।

कविता

मन को यूँ बहलाना क्या

राणा प्रताप सिंह

उसने बेंचा पानी पोखर, दिल के भीतर खौफ भरा है, जबसे हमनें कहना सीखा,
तुमने सपने बेंच दिए ऊपर– ऊपर हँसतें हैं बहुत कहा पर बोला कम
अब तो रुक जा ऐ सौदागर, खुशियों पर चिंता का पहरा, लिख करके रखता कागज पर,
अब इतना भरमाना क्या। मन को यूँ बहलाना क्या। अपना दर्द सुनाना क्या।

चोर उच्चक्के गली–गली में, हरियाली पर बंजर भारी, आपसे अब मैं कितना बाँटू,
महलों से खलिहानों तक हवा में है जहरीली धूल पोर–पोर है, भरा हुआ
सोने वाले नींद में माते, जिस विकास से मौसम रूठा, जो–जो रिश्ते रास न आए,
उनको कुछ बतलाना क्या। उस पर यूँ इठलाना क्या। उनकी बात बताना क्या

हमने बोए राह में काँटे, सबसे बड़ी लड़ाई खुद से, बरस बीत गए कहते–सुनते,
फूल कहाँ से उग आते दुश्मन बैठा दिल के पास लोगों से यूँ दिल की बात
जो राहें घनघोर अँधेरी, मन के भीतर शोर मचा है, किसने क्या की काना–फुस्सी,
उन पर आना जाना क्या। अपना क्या, बेगाना क्या। अब सबको बतलाना क्या।

मकान नं0 247, सेक्टर–2, उद्यान–2, एल्डिको, रायबरेली रोड, लखनऊ–226025
ईमेल : dr.ranapratap59@gmail.com

विमर्श

संविधान और वेद

जलपुरुष राजेन्द्र सिंह

कई साथियों ने मेरे पहले लेख को पढ़कर मुझसे कहा, "हाँ, संविधान को वेद तो मान सकते है, लेकिन हिंदू ही इसे अपना जीवनशास्त्र मानते हैं।" संविधान किसी एक धर्म के लिए नहीं होता है। वह सभी धर्मों, जातियों और समुदायों के जीवन–संचालन का शास्त्र है।

इतिहास में हिंदू, मुस्लिम, सिख, ईसाई आदि धर्म–शब्दों की उत्पत्ति कब हुई है? वेद इन सभी धर्मों से पूर्व के हैं। वे सार्वभौमिक हैं। आज के संविधान की तरह वेद भी सभी धर्मों के लिए हैं। वे जीवन जीने की पद्धति और आचरण सिखाते हैं। इसलिए वेदों को पूरे ब्रह्मांड का संविधान कहना भी उचित होगा।

जब पृथ्वी पर किसी के मन में राजा बनने का भाव आया, तभी राज और समाज को चलाने के लिए जीवनशास्त्र बनाने की आवश्यकता हुई। इसी जरूरत को पूरा करने के निए वेद का सर्जन हुआ है। तब तक देशों की सीमाएँ, धर्म –जातियां नहीं बनी थीं। देशों की सीमाऐं धर्म की मर्यादा के पार बनी है। इसलिए वेदों को दुनिया का, विश्व का सार्वभौमिक संविधान कहना सत्य होगा।

कुछ मित्रों और साथियों ने कहा कि वेद तो आदिज्ञान के शास्त्र हैं। उस समय मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारे और गिरजाघर नहीं थे। इनके संचालन का मार्गदर्शन इसमें नहीं दिखाई देता है। इसलिए वेद तो केवल आदिवासियों के जीवनशास्त्र हैं। अब जब धर्म, जातियाँ और समुदाय बहुत बन गए हैं, तब इसे आपका संविधान कैसे कहें?

यह तो सतयुग, कृतयुग और प्राकृतिक योग का संविधान है। उस समय सभी कुछ प्राकृतिक प्रार्थनाओं और व्यवस्थाओं से संचालित था। अब आदेश, निर्देश और नियंत्रण से संचालन होता है। इसलिए वर्तमान संविधान संचालित राज–समाज की गति के लिए संविधान जटिल हो गया है।

जैसे–जैसे जीवन जटिल होता है, वैसे–वैसे विधि, विधान और संविधान भी जटिल बनता जाता है। लोक जीवन की जटिलता को नियंत्रित करने के लिए नियम, उपनियम, कानून और कायदे बनाते हैं तथा संविधान में बदलाव करते रहते हैं। आदिवासी जीवन से कृत्रिम जीवन तक के इस सफर को अब हमें अपने संविधान से संचालित करना ही होगा।

डेटा सेंटर, जो हमारे पंचमहाभूतों, जीवन की मान्यता, विज्ञान, अध्यात्म और दर्शन को नष्ट करने वाला है, उससे हमें अपने सार्वभौमिक संविधान की शक्ति से ही बचाना होगा। इस संकट से बचने की शक्ति केवल भारत के संविधान के अनुच्छेद 21, 48ए, 50ए और जी में विद्यमान है। इन शक्तियों का उपयोग करके हम अपने पंचमहाभूतों की रक्षा कर सकेंगे। अन्यथा अब हमारी प्रार्थनाएँ वैदिक काल, कलियुग, सतयुग और कृतयुग जैसी प्रभावी नहीं होंगी।

अब नियंत्रण करने वाला संविधान ही प्रभावी होगा। यह भी लोकशक्ति की जागृति से प्रभावी बनेगा। वैदिक काल में वेद–संविधान आज के संविधान से भी अधिक प्रभावी था। आज के संविधान को प्रभावी बनाने हेतु मुख्य न्यायाधीश को भी जन–दबाव को मानना पड़ता है। जैसे 20 नवंबर 2025 का निर्णय संविधान के अपमान का मामला था। उसे भारत की जनता ने सत्याग्रह में बदलवाया और मनवाया है। इसलिए अब संविधान पालना हेतु न्यायपालिका, विधायिका, कार्यपालिका, सेना पुलिस सभी कुछ उपयोग होती है। वेद पालना केवल अनुशासन से ही जाती थी लेकिन वह सतयुग था। अब कलयुग है। कलयुग कठिन जटिल है। इसलिए संविधान पालना भी कठिन बन गई है।

हमारा संविधान और वेद आज हमें जीने योग्य धरती और प्रकृति को बनाने हेतु बहुत सारे सवाल पूछने के लिए तैयार कर रही है।

जीने योग्य भविष्य के लिए प्रकृति–संस्कृति को समग्रता में कैसे देखें। प्रकृति और संस्कृति के पुनर्जीवन के लिए ज्ञान का रूपांतरण साझे भविष्य को बेहतर बनाने हेतु कैसे क्यों करें? जीने योग्य धरती के लिए मानवीय कार्यों का पुनर्संयोजन क्यों?

क्या यह धरती जीने योग्य है? हमने विकास तो किया है। लेकिन इसके परिणामस्वरूप क्या हम केवल जीवित रह रहे हैं या संविधान में वर्णित गरिमापूर्ण जीवन जी रहे हैं? क्या हम

तरूण भारत संघ, अलवर, राजस्थान
ईमेलः jalpurushtbs@gmail.com

वास्तव में खुश हैं?

क्या हम प्रकृति के साथ न्याय कर रहे हैं? क्या हम प्रकृति की देखभाल कर रहे हैं और इसके साथ–साथ अपनी भी? हम जलवायु संकट का समाधान कैसे कर सकते हैं?

हम आत्मनिर्भर कैसे बन सकते हैं और गरिमा के साथ जीवन कैसे जी सकते हैं?

क्या हमारे जीवन को जीने योग्य बनाने का संबंध प्रकृति से है?

क्या अब अपने दृष्टिकोण और कार्यप्रणाली को नए सिरे से व्यवस्थित करने का समय आ गया है?

हाँ।

क्या हमारे पास ऐसे ज्ञान और व्यवहार के उदाहरण हैं, जिनसे हम सीख सकते हैं? क्या कोई ऐसा प्रमाणित ढाँचा है, जो हमारी सहायता कर सकता है? हाँ। देशज ज्ञान से प्राकृतिक पुनर्जनन के देशभर में बहुत से प्रयोगों में निर्माण हुआ हैय वे सब सीखा सकते है।

सफल प्रयोग कैसे है? हुए है? कहां हुए है

स्थानीय ज्ञान और प्रज्ञा से सीखकर, जो समान सिद्धांतों पर आधारित होते हुए भी प्रकृति के विभिन्न तत्वों की स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार अलग–अलग दृष्टिकोण अपनाते हैं और संस्कृति को आकार देते हैं। प्रकृति और मानवता के पुनर्जीवन के माध्यम से प्रकृति–संस्कृति का सतत अर्थव्यवस्थाओं के साथ एकीकरण जीने योग्य भविष्य को संभव बना सकता है। देश–दुनिया में सैंकड़ों–हजारों सफल प्रयोगों को सिद्धी मिली है।

जहां भूसांस्कृतिक मानचित्र बनाकर इसे सामने रखकर योजनाकारों ने योजना बनायी है। उसमें प्रकृति–संस्कृति पर विश्वास के साथ विस्थापन, बिगाड़ विनाशमुक्त निर्माण किया है। वहीं पर जीवनीय जीने योग्य धरती बन रही है। लोग भी आनंदित होकर जीवन जी रहे है। वहां की जलवायु स्वास्थ्य है। सभी शांति से समृद्ध प्रकृति और संस्कृतिमय जीवन भारत में सकल उत्पाद बढ़ाने में मददगार बन रहे है।

हिन्दी कविता

हे विराट वृक्ष दो क्षमा...

पं0 धीरज मिश्र 'शाण्डिल्य'

दृष्टि हम उठा नहीं सके।
शीश हम उठा नहीं सके।
प्रश्न हम उठा नहीं सके।
शस्त्र हम उठा नहीं सके।
हे विराट वृक्ष..! दो क्षमा,
हम तुम्हें बचा नहीं सके।।

तेज धूप, धूल, बारिशें,
आँधियाँ बड़ी बड़ी सहीं।
आसमान की मुसीबतें,
बिजलियाँ बड़ी बड़ी सहीं।।
रात दिन डटे रहे सदा,
छाँव ही लिए हुए मिले।
अनकही कहानियाँ कई,
बाँचते हुए सुए मिले।।

सैकड़ों बरस गुजर गए,
पीर तुम सुना नहीं सके।
हे विराट वृक्ष..! दो क्षमा,
हम तुम्हें बचा नहीं सके।।

जीव–जन्तु रह रहे जहाँ,
वैरभाव भूल–भाल कर।
देहयष्टि में रखे रहे,
एक सृष्टि तुम सम्हालकर।।

घर बने हरेक डाल पर,
घोसले कई प्रकार के।
शुद्ध वायु बाँटते रहे,
तुम बिना किसी प्रचार के।।
मौन क्यों खड़े रहे सदा,
शोर क्यों मचा नहीं सके..?
हे विराट वृक्ष..! दो क्षमा,
हम तुम्हें बचा नहीं सके।।

पत्तियाँ सिहर उठीं सभी,
काँपता हुआ तना गिरा।
निर्दयी विकास हँस पड़ा,
किन्तु दृष्टि ली स्वयं फिरा।।
नीड़ अनगिनत उजड़ गए,
मुस्कराहटें गुजर गयीं।
सुरमयी किलोल थम गया,
चहचहाहटें गुजर गयीं।।

जिन्दगी पुकारती रही,
मौत से छुड़ा नहीं सके।
हे विराट वृक्ष..! दो क्षमा,
हम तुम्हें बचा नहीं सके।।



F–102, ग्राउण्ड फ्लोर, साउथ सिटी, रायबरेली मार्ग, लखनऊ–226025
ईमेलः dheerajkmish@gmail-com

कविता

ढेर सारी लड़ाइयों के बीच प्रेम

राणा प्रताप सिंह

कम नहीं हुई लोगों की लड़ाइयाँ
पृथ्वी पर पशुओं के घटते जाने
और मानवों के बढ़ते जाने के बावजूद।
युद्ध जारी हैं, देशों के बीच एक के बाद एक।

सपाट पठारों, उजाड़ मैदानों से लेकर
और बसी हुई बस्तियों में जारी रहता युद्ध
बिना किसी जवाबदेही के
साल–दर–साल बढ़ते विध्वंस के बीच।।

मशीनों ने मचा रखी है, भारी मारकाट
आग की लपटों से घिरे हैं, शहर और देहात
मचलते मनों की मनमानी खत्म नहीं होती
बढ़ती जा रही है और अधिक वर्चस्व की चाह।

कोई न कोई लड़ाई चल रही है
किसी न किसी के बीच हर वक्त
कई देशों में मचा है घमासान
मनुष्य बनने की तमाम कोशिशों के बावजूद।

ठट्ठ के ठट्ठ लोग भाग रहे हैं
एक शहर से दूसरे शहर
अपने देश से औरों के देश
बेचैन मन में शांति की आस लेकर।

सदियों बीत गए सभ्यता की लकीरें खींचते
मानवता का ढोल पीटते
और पृथ्वी को नष्ट करते
इन्हीं लपलपाती लड़ाइयों के बीच।
पहाड़ों को तोड़ वनों को काट
बसाई गयी थी, जो रिहाइशें
उनमें उमड़ने लगे हैं, सैलाब
मन और मकानों को तोड़ते हुए।

युद्ध और खेल में एक जैसा रोमांच ढूंढते
प्रेम और मृत्यु का साथ–साथ उत्सव मनाते
खोज रहें हैं, लोग अपने–अपने भगवान
अपने–अपने सुख के लिए दिन रात।

इन्हीं लड़ाइयों के बीच कब्जा लेते लोग
खेत मकान और दुकान, देश, सत्ता और व्यापार
पर कठिन होता जा रहा है खुश रहना लगातार
और धारण कर पाना मनुष्य होने का आनन्द।

मुझे तलाश है उस गाँव की
जो अहंकार की उफनती नदी के उस पार बसा हो
फूलों के गंध की घनी छाँव में
नदी, पर्वत और पहाड़ों के साथ।

जहाँ सुबह की स्वच्छ हवा में ध्यानमग्न
मैं तलाश सकूँ इन सारी लड़ाइयों के स्रोत
प्रेम के पानी का उद्गम
और सनातन साझेदारी के अनूठे सिद्धांत।



मकान नं0 247, सेक्टर–2, उद्यान–2, एल्डिको, रायबरेली रोड, लखनऊ–226025
ईमेल : dr.ranapratap59@gmail.com

संस्कृत

प्रतिशोधः न, धर्ममार्गः

गणेश बाजपेई

महाभारतयुद्धस्य समाप्तेः अनन्तरं रणभूमिः शान्ता अभवत्। किन्तु द्रोणपुत्रस्य अश्वत्थाम्नः हृदये क्रोधाग्निः अद्यापि ज्वलति स्म। पितुः वियोगेन प्रतिशोधभावेन च प्रेरितः सः तादृशं कर्म अकरोत्, यस्य विषये सः जीवनपर्यन्तं पश्चात्तापम् अनुभवत्।

कालान्तरे तस्मै बोधः अभवत् यत् क्रोधेन कृतं कर्म शत्रुं यावत् न पीडयति, तस्मात् अधिकं स्वयमेव पीडयति।

मानो धर्मस्य वाणी एवं वदति—

"वत्स! तव पितुः प्रति अन्यायः अभवत्, एतत् सत्यम्।

किन्तु प्रतिशोधभावेन त्वया निर्दोषाः अपि पीडिताः।

अयं एव धर्म-अधर्मयोः, न्याय-प्रतिशोधयोः च भेदः।"

महाभारतस्य एषः प्रसङ्गः केवलं इतिहासः न, अपितु भारतीयसंस्कृतेः अमूल्यः सन्देशः अस्ति।

अस्माकं संस्कृतिः वदति—

"क्षमा वीरस्य भूषणम्।"

यदि कश्चित् अस्मान् प्रति अन्यायं करोति, तर्हि तस्य प्रतिकारः कर्तव्यः, किन्तु न क्रोधेन, न द्वेषेण, अपि तु धर्मेण विवेकेन च।

यतः—

अधर्मस्य उत्तरम् अधर्मः न भवेत्।

असत्यस्य उत्तरम् असत्यं न भवेत्।

क्रोधस्य फलम् विनाशः एव भवति।

महाभारतस्य उपदेशः अस्ति—

"मनुष्यस्य महान् जयः अन्येषां प्रति न, अपितु स्वक्रोधस्य स्वाहङ्कारस्य च विजयः अस्ति।"

अतः यदि अद्य जीवनपथे कश्चित् भवतः प्रति अनुचितं आचरणं करोति, तर्हि प्रतिशोधाग्नौ स्वमनः मा दह। न्यायं कालाय ईश्वराय च समर्प्य, सत्यस्य सदाचारस्य च मार्गे गच्छ।

संस्कृतिसन्देशः

सनातनसंस्कृतिः प्रतिशोधं न शिक्षयति, धर्मपालनं शिक्षयति।

सा द्वेषं न, करुणां शिक्षयति।

सा क्रोधं न, आत्मसंयमं प्रदर्शयति।

यतः अन्ते विजयः प्रतिशोधस्य न, धर्मस्य एव भवति।

क्षमा, शान्तिः, हास्यं च, जीवनस्य विभूषणम्।

क्रोधं त्यक्त्वा हसामः, एतदेव शुभलक्षणम्॥

"यतो धर्मस्ततो जयः।"

अस्वीकरण : यह प्रस्तुति महाभारत के प्रसंगों से प्रेरित एक नैतिक एवं सांस्कृतिक चिंतन है। इसका उद्देश्य किसी शास्त्रीय मत का अंतिम निर्णय देना नहीं, बल्कि धर्म, विवेक और आत्मसंयम के महत्व को सरल रूप में प्रस्तुत करना है। विभिन्न परम्पराओं एवं मतों का पूर्ण सम्मान किया जाता है।

सेक्टर–3, उद्यान–2, एल्डिको, रायबरेली रोड, लखनऊ
ईमेलः gsbajpai1591963@gmail.com

हिन्दी कविता

रेत का बुर्ज

सत्येन्द्र कुमार सिंह 'बाबा पृथ्वी'

हाथों की लकीरें पढ़ते–पढ़ते
उंगलियाँ थक गईं,
मगर वक्त की रेत
अभी भी नम है।
मैंने बुर्ज बनाना छोड़ दिया,

तूफान आता ही नहीं,
बस बहुत धीरे–धीरे
रेंगता है हवा में।
और फिर भी,
हर सुबह जब पोरों में चुभती है धूप,

तो लगता है–
शायद ये रेत
आँखों की नमी से पकी है,
शायद ये बुर्ज
ढहने को ही खड़ा है।

लखनऊ, उत्तर प्रदेश
ईमेलः satyen.writer@gmail.com

भोजपुरी

भोजपुरी भाषा के संवैधानिक दर्जा के सवाल

नरसिंह

मानव जाति नवयुग के स्वागत खातिर द्वार पर खड़ा बा। आपन मूल्यवान समय बर्बाद मति करीं। अपनी मातृभाषा भोजपुरी, संस्कृति के संरक्षण, संवर्धन आ विकास बदे एकजुट होखे क समय आ गईल बा। एह समय मे अपने शक्ति अउरी सामर्थ्य क सर्वाधिक उपयोग उचित होई।

लोकरीति, नीति, संस्कार, सामाजिक सरोकार से सराबोर, मधुर मिठास से भीनल भोजपुरी भाषा हमनी के सांस्कृतिक विरासत क अनमोल निधि ह। भोजपुरी भाषा खाली बातचीत क माध्यम ना हवे ई भोजपुरिया समाज के सांस्कृतिक, वौद्धिक आ भावात्मक पहिचान क आधार ह। मातृभाषा में मनुष्य के भीतर क भाव स्वभाविक आ सहज रूप मे अभिव्यक्त होला। ई व्यक्ति के व्यक्ति से आपस मे जोडिके राखेले। एकर उपेक्षा क अरथ भईल अपने मूल जड से कटल।

भाषा अउरी ओकर साहित्य तबे समृद्ध होई, फली फूली जवना के साधक तपस्वी बनिके खडा रहिहें। सुविधा भोगी लोगन से कवनो उमीद नाही राखेके चाही। भोजपुरी भाषा भोजपुरियन क आत्मा आ संस्कृति क धड़कन ह। एकर जड संस्कृत जईसन प्राचीन आ समृद्ध भाषा से जुडल बा। ई बाति कहले मे कवनो अतिश्योक्ति नईखे की भोजपुरी संस्कृत मातृकुल क भाषा ह।

भोजपुरी भाषा हमनी के संस्कृति, पहिचान अउरी आत्मियता से अपृथक रूप से जुडल बा। हमनी के अपनी मातृभाषा भोजपुरी के आत्मविश्वास, सम्मान आ समादर के साथे अपनावल जाई त ई स्वभाविक रूप से वैश्विक पटल पर जगमगाये लागी। आजु भी एकर लोहा सभ लोग मानेला।अपसोस बा कीअईसन समृद्ध भाषा के भी संवैधानिक दर्जा के सवाल पर जनजागरण अभियान चलावे के पडी रहल बा।

कवनो प्रक्षेत्रके सर्वागीण विकाश (भौतिक, मानसिक, आत्मिक) खातिर सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनैतिक जागरूकता होखे के चाहीं। ई जागरूकता तबे आई जब ओहिजा के लोग अपनी मातृभाषा आ संस्कृति के प्रति आदर क भाव राखी।

भोजपुरी भाषा भारत की बड़हन क्षेत्र मे रहेवाला लोगन क भाषा ह। भोजपुर क्षेत्र अपनी शौर्य, पराक्रम, विद्वता, आध्यात्मिकता आ परिश्रम खातिर संसार मे जानल जाला। हमनी के अपनी मातृभाषा के सम्मान करेमे काहें उदासीन बानी। ई प्रश्न बार बार दिमाग मे घूमी रहल बा। एकर सटीक उतर भोजपुरिया भाई बहिनी ही दे सकेले। एकर उतर इनकी अस्तित्व से जुडल बा। आशा ही ना बल्कि पूरा विश्वास बा की एकर उतर जरूर मिली।

विश्व क कवनो अईसन देश नईखे जहवा के लोग अपनी मातृभाषा, मातृभूमि, संस्कृति के प्रति समादर क भाव ना राखत होखे। सभ देशन के लोग अपनी मातृभाषा की विरुद्ध कुछु भी सुनके तईयार ना होला, उपेक्षा विरोध बर्दास्त ना करेलें। भारत मे भी भोजपुरी क्षेत्र के छोडिके अन्य भाषा भाषी क्षेत्र के लोग अपनी मातृभाषा के शीर्ष स्थान दिहले बा। पूर्वोत्तर राज्य के लोग अपनी मातृभाषा आ संस्कृति के



एह तरह से संरक्षण अउरी संवर्धन कईले बा की जवना से उनकर मातृभाषा, संस्कृति विश्व पटल पर स्थापित हो रहल बा। जवने समाज के जेतने विकाश होला ओकर भाषा आ संस्कृति भी समृद्ध होत चली जाले। इ शास्वत सत्य हवे।

भोजपुरी क्षेत्र के लोग अपनी मातृभाषा क अपेक्षा, अवदमन काहें स्वीकार कईले बा? इ एगो जियतार सवाल उठ रहल बा, एकर उत्तर जानल जरूरी बाटे। भोजपुरी भाषा के अपने ही देश के संविधान मे स्थान ना मिलल। भाषा समृद्ध, संस्कृति उदार, माटी उर्वरक, देश के आजादी से लेके विकास मे महत्वपूर्ण योगदान।

आजादी के बाद भोजपुरी क्षेत्र के साहित्यकार लोग भोजपुरी भाषा में साहित्य सृजन करेमे दिलचस्पी ना राखल। भोजपुरी क्षेत्र के विद्वत समाज, राजनेता आजादी के खुशी में अपनी मातृभाषा संस्कृति के भूला गईल। अजुओ भूलईले बा। संवैधानिक दर्जा के सवाल पर अलग भावधारा फईलावल जाता। इहा तक की जनगणना के समय मातृभाषा के कालम मे भोजपुरी लिखे से परहेज बा। दोसरा के लिखें के उत्साहित कहाँ से करी उलटे दोसर पाठ पढावे लगिहे। इ सभ भोजपुरी क्षेत्र क दुर्भाग्य बाटे। एह आचरण के कपटाचरण कहल जाई। आपन दिनचर्या भोजपुरी मे करिहे सम्मान

पूर्व प्रधानाचार्य, मनोरमा निवास, मकान नम्बर 684/1,वार्ड सं–19, उमा नगर उत्तरी देवरिया, उत्तर प्रदेश,पिन कोड– 274001
ईमेलः ssm1955.narsingh@gmail.com

दिआवे क बाति आई त एने ओने क बाति बतिया के गोल गोल घूमा दीहे। भोजपुरी में मानक पुस्तक नईखे, व्याकरण अउरी सामर्थ्य पर सवाल पता नाही का का।

भोजपुरी क्षेत्र के लोग जेके सम्मान दीहल, जेकरा पर विश्वास कईल उहे लोग भोजपुरी के साथे इन्साफ ना कईल। सबसे अजूबा बाति इ बा की भोजपुरिया लोग जे शीर्ष पर बईठल बा उहे नईखे चाहत की भोजपुरी के संवैधानिक दर्जा मिले। इतिहास साक्षी बा।

भोजपुरी भाषा के विकाश अउरी संवैधानिक दर्जा खातिर भारत मे सैकड़ो संगठन बनल बा, कवनो संगठन योजनावद्ध तरीका से कारगर प्रयास ना कईल। अब्बो ना करेला। कविता, कहानी पढिके सम्मेलन कराके अपने उत्तरदायित्व से मुक्त कलेला। हमरा बुझाला की भोजपुरी आन्दोलन के धार कमजोर करेके सूनियोजित प्रयास हवे, भोजपुरी के पहरूआ बनेके उपर झापर दिखावटी कदम ह।

आज त भोजपुरी के संवैधानिक दर्जा क सवाल एह मोड पर आ गईल बा की जनजागरण के साथे साथे आन्दोलन तेज कईल उचित होई। साहित्य सृजन भी आ सडक पर भी। कवनो भाषा अपने उत्कृष्ट साहित्य से ही विश्व मे प्रतिष्ठित होई। साहित्य आन्दोलन क धार तेज करेला अउरी अपनी सामर्थ्य के भी बतावेला।

भोजपुरी क्षेत्र के सांसद, विधायक आ अन्य राजनितिक लोग भोजपुरी के संवैधानिक दर्जा के सवाल पर गम्भीर नईखे, सदन मे एह मुद्दा पर एकजुटता क अभाव देखे के मिलेला। जोर दार आवाज बुलन्द करेमे लजाला लोग। सबसे बडहन बिडंबना बा की जे लोग भोजपुरी के अँचरा पकडि के कहाँ कहाँ उच्च पद प्रतिष्ठा पा गईल ओकरा बाद अपनी महतारी भाषा भोजपुरी के ही भुला गईल।

साहित्य रचे क क्षमता जेकरा लगे बा उ लोग अपनी मातृभाषा भोजपुरी मे रचो, इतिहास साक्षी बा की मातृभाषा मे रचल साहित्य ही सर्वश्रेष्ठ स्थान पवले बाआ वैश्विक साहित्य मानल जाला, उदाहरण के तौर पर कबीर, रवीन्द्र नाथ टैगोर, विद्यापति वगैरह वगैरह।

भोजपुरी भाषा के साहित्यकार लोगन केउचित होई की भोजपुरी के मूल शव्द (देशज) के साथे मातृकुल संस्कृत के तत्सम, तद्भव शव्दन क प्रयोग कईल। भाषाई छूआ छूत से दूर होके सभ दरवाजा खिडकी खोलि के राखीं। आपसी संवाद अपनी मातृभाषा मे कईल उचित होई। अपनी मातृभाषा के जीवन क अंग बनाली।

फुहरपन(अश्लीलता) भोजपुरी भाषा आ संस्कृति मे कैंसर जईसन फईल रहल बा, एकर. सावधानी से आपरेशन करेके होई। इ प्रयास अपने घर से ही कईल उचित बा।

भोजपुरी प्रक्षेत्र के मनई मे अपनी मातृभाषा के प्रति उपेक्षा क भाव, संवैधानिक दर्जा के सवाल पर उदासीनता, उत्कृष्ट साहित्य सृजन मे रूचि क अभाव, भाषा के अवदमन पर संघर्ष से पीछे हटल, एह सभ कर उत्तर जाने खातिर भोजपुरी क्षेत्र के सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक परिदृश्य मे सूक्ष्मता पूर्ण झाके के पडी, अध्ययन करेके पडी। एह संबंध मे हमरा बुझाला की...

भोजपुरी माटी धनी बा पर लोग गरीब बा। बहुतायत लोग दरिद्रता के बजह से आपन अस्तित्व रक्षा खतिर उलझल रहेला, परेशान, बेचौन अउरी व्यस्त रहेला। अईसन परिस्थिति मे भाषा आ संस्कृति ओकरे खातिर कवनो विषय नईखे।

सूशिक्षित लोग यथास्थिति बनल रहे क मानसिकता बनाके रहेलें। एह लोग का मातृभाषा आ संस्कृति से कवनो सरोकार नईखे, संघर्ष से घबराहट होला। शास्त्र मे ठीके लिखल बा.... लता, बनिता, पंडिता पराश्रिता।

जे लोग सुविधा भोगी होला उ कवनो प्रकार के जोखिम उठावे क साहस ना कईल चाहेला। नात अईसन सोच राखेला। अपवाद मे कुछ लोग भेटाला। मध्यम वर्गीय समाज आंदोलन पर उतर सकेला, उतरलबा। एह लोग के भी वर्तमान मे अपना भविष्य के लेके चिंता रहला के करण मातृभाषा आ संस्कृति के प्रति सजगता अउरी जागरूकता क अभाव रहेला। मध्यम वर्गीय समाज के लोग के मातृभाषा भोजपुरी के संवैधानिक दर्जा के सवाल पर जोडल आवश्यक बा। एकरा साथे आर्थिक समस्या के समाधान क विकल्प लेके आगे बढे के पडी। जवना से मध्यवर्गीय समाज इ समझें की एह आन्दोलन से हमनी के मातृभाषा, संस्कृति के उत्थान की साथे आर्थिक स्वावलम्बन भी मिली।अर्थाभाव से छुटकारा पावे खातिर भोजपुरी भाषा के साहित्यकार कुत्सित (अभद्र,) साहित्य रचलें। एहसे भोजपुरी क सामाजिक अवमूल्यन भईल। आजु भी एसे नईखें उबरल।

भोजपुरी भाषा के संवैधानिक दर्जा खातिर सफल आंदोलन बदे कुछ सुझाव बा...

भोजपुरिया लोगन मे अपनी मातृभाषा के प्रति समादर क भाव आ जागरूकता।

एक जूटता आ कुशल नेतृत्व। राजनीतिक इच्छा शक्ति। नवजागरण अभियान योजनावद्ध तरीका से चलावल जाव।जवना से भोजपुरी समाज मे जागरूकता आवे।

भाषा के अर्थव्यवस्था से जोडिके आर्थिक स्वावलम्बन क विकल्प दीहल जा।

आखिर मे सभ भोजपुरिया भाई बहिन से विनती बाकी एकताबद्ध होके अपनी मातृभाषा भोजपुरी के सर्वोच्च स्तर पर प्रतिष्ठित करें खातिर कमर कसलीं, घर में बईठला से कूछ ना होखी। वैश्विक पटल पर भोजपुरी भाषा क गुणगान हो रहल बा, सम्मान मिल रहल बा। जरुरत बा हमनी के हुँकार भरिके अपनी मातृभूमि, मातृभाषा आ सांस्कृतिक वैभव स्थापित करे खातिर भोजपुरी पुनर्जागरण मंच के भोजपुरी अभ्युदय रूपी यज्ञ में कूदी पड़ी। इ आन्दोलन न्यायसंगत बा। हमनी के निश्चित रूप से विजयी होखब।

भोजपुरी भाषा के संवैधानिक दर्जा निश्चित रूप से मिली एकरा खातिर उपयुक्त समय आ गईल बा।

जागीं, उठींआ चल पडी।

भोजपुरी

डोली

कृष्णदेव 'घायल'

विकास के बयार अउर बदलत मान्यता का चलते कुछ रीति– रिवाज, संस्कृति –संसाधन जमीन से उधिआ रहल बा। गाँव गिराँव में जिनके घर बीचे गाँव में रहे, उनकर बहुत बड़ासत होखे। लोग कहे फलाने के घर बीच गाँव में हवे। अब ई मान्यता बदल गईल। अब ते केहू के घर बहरे सड़क पर होई त लोग के कहत सुनाला जे फलाने के घर का पूछेके, सड़के पर बिराजता।

ओतना घरी बीच गाँव में जाये –पहुँचे खातिर कोली रहे आ सहर बजार में गली कहाव।चार चकिया गाड़ी ना रहे,सम्पन्न बड़कवा लो के लगे तेज रफ्तार चले खातिर घोड़ा के सवारी होखे।

कवनो बिआह बरिआत के मोका पर दुलहा के डोली , कोली से निबह जात रहे। डोली में कनियाँ के बिदाई के चलन रहल हवे। सकिस्ता जगह होखे तबो डोली कवनो तरे सभका दुआर पर लाग जात रहे,कवनो अण्डस ना होखे पगडण्डी पातर ठहर से डोली ले जाये में।

रात बिरात,कुबेरा सुबेरा,जब केहू बेमार अजार होखे त डोलिये एगो संसाधन रहे रोगिहा के बैद का ठाँव पहुँचे में। निरधन गरीब लो के डोली के मसूल देवे के समरथाह ना रहे त छोटी चुकी खटिया के जोगाड़ से खटोला बना के कारज निबाह लेत रहे।

डोली के सजावट सिङार ,ऊपर के ओहार अउकात का हिसाब से देखते बने। कवनो नामी गिरामी कनियाँ के डोली अपना महत्ता बिसेसता से डोला बोलात रहे। ईजत राखे में, मरयादा ढोवे में डोली अपने आप मरयादा के परयाय बन गइल।

सुकवि श्मलिक मोहम्मद जायसी श के रचल श्पद्मावत श्महाकाव्य में डोली के महत्ता जानि के मन में अदभुत भाव के उपज सहजे भेंटा जाला। डोली ,राजा रतनसेन के जेहलखाना से बाहर करे में जवन भूमिका निभवलस ओकर बखान त अलगे बा,परम सुन्दरी रानी पद्मावती के ईजति नसइले से बाँच गईल । इतिहास के, साहित्य के पोथी पढ़ला से देंहि के रोवाँ ठड़ा हो जाला।

अनेकन साहित्यकार ,काव्यकार लोग अर्थी के डोली के संज्ञा देले बा। ई जगहीं रचना में डोली के परियोग मानव– मन के भावुकता प्रदान करे में भरपूर सहयोगी बा। डोली कहार बिना आ कहार डोली बिना अस्तित्वहीन हवे। इन्हने के अटूट प्रेम सम्बन्ध दुनियाँ में मिसाल कायम कइले बा।डोली कहार के नाम उचारन एके साथे होखेला।डोली के भार त कान्हे पर जवन होखे बाकिर एगो बिसवास– भरोसा के बड़हन भार कपारे प लेहले,कुसलता जोगावत मंजिल तक चहोंपला के चिन्ता के भार कुछ ढेरे बुझात।कहारी करे वालन के नमन करत जीवे नइखीं अघात।

डोली के एगो नाँव पालकी हवे। पालकी के स्वरबोध हिया के आहलादित,प्रकम्पित करे में कवनो कसर ना छोड़े। एगो लमहर कालखण्ड में द्रुतगामी वाहन–संसाधन का अभाव में डोली के असवारी कहि के सम्बोधित



कइल जात रहे, से अब नइखे।

निरगुनियाँ भजन लिखे–गावे वाले लोग बेर बेर डोली कहार के बात जीवात्मा के प्रस्थान करे के बेरा के बरनन कइले बा। कलम चलते घरी कवि महातम राय श विनोद श जी के रचना मन परल त जियरा भावुक हो उठल———

रचि रचि कइदा सिङार मोरे भउजी,

अइलें दुअरवाँ कहार ।

डोली एक ओर अनुराग, लज्जा, कोतूहल के तिजोरी ह , त सक्ती, भरोसा, बिसवास के खजनवों हवे । सजोर– नजोर, सुख –दुख में बराबर के भाव रखे में कुसल साधक का भूमिका में मिली । समतावादी सद्गुन से सनाइल तटस्थ तपस्वी का रूप में, परोपकारी बनि के हरोदम तइयारे रहे ।

कनियाँ के बिदाई के बेरा डोली ,बखरी के असल दुआरी पर ओहार सजा के लाग जात रहे । कनियाँ के माई,चाची,फूआ, मौसी,बहिन,भउजी लोग कुछ सिखावन का साथे खोइंछा दे के बइठा देसु। कहार लोग जब डोली कान्हे पर उठा के चले लागे त घर के सगरो सब पूका फारि के रोवे लागे,ओने कनियाँ के रोवाई आ बिरोग पैंड़ा में ओतना दूरी तक चलत रहे जवले हार थाक न जास।

गाँव–चन्द्रापार, पोस्ट–भोपौरा, जनपद–मऊ, (उत्तर प्रदेश)
ईमेलः ssm1955.narsingh@gmail.com

भोजपुरी के पुरोधा कवि धरीक्षण मिश्र जी के एगो हियाछुवत गीत अपना समय के बेजोड़ रचना हवे————

काहे खातिर डोली में रोवत जाले कनियाँ।

जीवात्मा के सम्बन्ध परमेश्वर से जतावत निरगुनियाँ लोग बहुत ढेर लोकगीतन के सृजन कइलें जेहमे डोली कहार के जिकिर भरपूर मिलेला ———

डोलिया कहार लेइके अइलें मोर सजनवाँ

सजनवाँ हो मोर माङेलन गवनवाँ।

डोली कहीं मिलन के उल्लास त कहीं रुखसती के पीरा,कहीं कुरुझत लचारी त कहीं मुदइयो के डर के चोट,समान भाव से अङेजत रहल। नीमन–बाउर, टेढ़ –सोझ अनेकन संस्कृतियन के सम्बाहक डोली अब अतिरिछ हो गइल बाकिर साहित्यकार लो के मन–कलम से अब तलक ले भावनात्मक लगाव बनवले बा ।

हरियाणवी

गजल

मंगतराम शास्त्री 'खड़तल'

पढैं भतेरे मगर कढण म्हं टेम लाग्गै सै ।
चाल जमान्ने की समझण म्हं टेम लाग्गै सै।।

बाजारां म्हं खूब हुवै इब झूठ का सौद्दा
सच का शोध्या माल बिकण म्हं टेम लाग्गै सै।

लोग तो नाम कमा ज्यां डीक्के तोड़ कै भी, पर
जीवन का इतिहास गढण म्हं टेम लाग्गै सै।

नारे तो भौं कोये ला दे राज बदलण के
इन्कलाब का रंग चढण म्हं टेम लाग्गै सै।

माफी वीर बणन म्हं ज्यादा जोर नी पड़दा
भगतसिंह सरदार बणन म्हं टेम लाग्गै सै।

तुरत हथेली पै सरसों ना हरी हुया करदी
धरती बोया बीज उगण म्हं टेम लाग्गै सै।

दस नहुआं की नेक कमाई राह बरकत की
पर इस राह् की ओर बढण म्हं टेम लाग्गै सै।

आश करैं ब्याह्ली तै सारे नेग बरतण की
पर दूज्जै घर नेग निभण म्हं टेम लाग्गै सै।

पिंजरे म्हं तै काढ्या पंछी ऊंए नी डरदा
मन म्हं तै पिंजरा लिकड़ण म्हं टेम लाग्गै सै।

तन म्हं लाग्गी आग त फिर भी यार बुझ ज्या सै
दिल म्हं लाग्गी आग बुझण म्हं टेम लाग्गै सै।

माड़ी सीख जगा दे घर म्हं रैड़ पल भर म्हं
घर म्हं जाग्गी रैड़ मुकण म्हं टेम लाग्गै सै।

राक्खूं पूरा ध्यान कदे वा रूष ना जावै
क्यूंके उस बैरण के मनण म्हं टेम लाग्गै सै।

बाहर के जाले तो जल्दी तार ल्यूं सूं मैं
भीत्तर के जाले उतरण म्हं टेम लाग्गै सै।

बहती धारा गेल बहण म्हं भोत आसान्नी
उल्टी धारा गेल बहण म्हं टेम लाग्गै सै।

लिखणा चाह्वैं,मगर पढण का लोढ नी ठान्दे
क्यूं के मुक्तीबोध पढण म्हं टेम लाग्गै सै।

गजल लिखण म्हं 'खड़तल' ज्यादा तौल ना करिये
साच्ची–सुथरी बात कहण म्हं टेम लाग्गै सै।

शास्त्री भवन, नया जवाहर नगर, चौड़ी गली, नजदीक जाइट इंजीनियरिंग कालेज, सफीदो रोड, जींद
ईमेलः mangatshastri@gmail.com

Research

Peer Reviewed

Health, Nutrition, and Lifestyle of Incarcerated Males: Insights from District Prisons in Uttar Pradesh, India

Sunita Mishra & Kuril Sanjeet

Abstract

Prisons are unique institutional settings where inmates have limited autonomy and rely entirely on the facility for food, healthcare, and opportunities for physical activity. In district prisons of Uttar Pradesh, overcrowding, limited resources, and constrained infrastructure pose significant challenges to inmate health and well-being. Nutrition plays a crucial role in maintaining physical and mental health, yet institutional diets are often monotonous, carbohydrate-heavy, and deficient in essential vitamins, minerals, and protein. Fresh fruits, vegetables, and animal-based proteins are limited, while energy-dense snacks like jaggery or biscuits provide quick calories but insufficient nutrients. Restricted physical activity and repetitive daily routines further compromise health, increasing the risk of chronic conditions, fatigue, and psychological stress. Inmates develop adaptive coping strategies to manage these challenges, including forming social networks, participating in structured activities, engaging in religious or cultural practices, and self-initiated exercise routines. Such behaviours enhance resilience, support mental health, and foster a sense of agency despite the constraints of incarceration. Ensuring food hygiene, nutritional adequacy, and access to recreational opportunities not only improves inmate well-being but also supports rehabilitation, reduces long-term healthcare burdens, and promotes post-release reintegration. This article examines the interplay of nutrition, lifestyle, and coping mechanisms in prisons, highlighting both challenges and opportunities. By understanding these factors, policymakers and prison authorities can implement targeted interventions that enhance health, morale, and social outcomes, while reinforcing broader public health, social responsibility, and human dignity.

Keywords: Prison nutrition, Inmate health, Lifestyle, Coping strategies, Physical activity, Dietary adequacy

1. Introduction

Prisons are unique institutional environments where personal freedom is restricted and daily routines are strictly regulated. Inmates rely entirely on the facility for food, healthcare, and opportunities for physical activity. While incarceration serves the dual purpose of punishment and rehabilitation, the conditions within many correctional facilities significantly affect the health and well-being of prisoners [1]. Overcrowding, limited access to healthcare, and monotonous daily routines create challenges that can worsen physical and psychological health. In Uttar Pradesh, district prisons often exceed their intended capacity, amplifying these systemic stressors and affecting the delivery of basic services, including meals and recreational activities [2].

Nutrition is a central determinant of inmate health. Institutional diets are generally designed to be cost-effective and easy to prepare, often prioritizing caloric adequacy over nutrient diversity. Meals are typically carbohydrate-heavy and low in fresh produce, resulting in limited intake of essential vitamins and minerals. Such diets, when combined with restricted opportunities for exercise and high-stress environments, can negatively influence physical health, mental well-being, and overall resilience [3]. Malnutrition, whether due to inadequate caloric intake or poor nutrient quality, can reduce immunity, impair cognitive function, and increase susceptibility to chronic diseases. Limited dietary variety and low nutritional awareness further complicate health outcomes, highlighting the need for systematic assessment of inmate diets and their health implications. In addition to nutrition, inmates develop adaptive behaviours to cope with institutional constraints. These strategies may include participating in structured

*Department of Food and Nutrition, Babasaheb Bhimrao Ambedkar University, Lucknow.
*Corresponding author email : rudrapsingh.doc@gmail.com





activities, forming supportive peer networks, observing cultural or religious practices, or creating personal routines that offer psychological stability. Such coping mechanisms play a vital role in managing stress and maintaining well-being in environments where autonomy is minimal. Understanding these behaviours, alongside dietary practices, provides a comprehensive view of health determinants in prison populations and can guide interventions to improve both physical and mental health outcomes [4].

Importance of Nutrition, Lifestyle, and Coping Behaviours in Prisons

Prisons represent highly structured environments where individuals have limited autonomy, restricted mobility, and regulated access to essential resources. In such settings, the quality of life is closely tied to institutional provisions, including food, healthcare, and opportunities for recreation. Nutrition, in particular, is a fundamental determinant of both physical and mental well-being. For incarcerated individuals, meals are not merely a source of energy; they form the primary, and often only, means of sustaining bodily health. Diets in prisons are typically planned for efficiency, often emphasizing staple carbohydrates over fresh produce or nutrient-rich foods. While such meals meet basic caloric needs, they may lack essential vitamins, minerals, and dietary fibre, resulting in "hidden hunger" or subclinical deficiencies. These nutritional limitations can weaken the immune system, reduce cognitive performance, impair emotional regulation, and exacerbate chronic health conditions, including hypertension, diabetes, and gastrointestinal disorders [5].

Lifestyle factors, particularly physical activity and daily routines, are equally important in influencing the health of incarcerated populations. Limited access to exercise and recreational spaces contributes to sedentary behaviour, which, when combined with nutrient-poor diets, can increase the risk of obesity, cardiovascular problems, and musculoskeletal issues. Additionally, the repetitive and confined nature of prison life may induce psychological stress, anxiety, and depression. In this context, coping behaviours become crucial for survival and adaptation. Inmates often develop strategies such as forming supportive social networks, engaging in religious or cultural activities, participating in structured routines, or seeking recreational opportunities when available. These adaptive behaviours help manage stress, maintain social cohesion, and promote a sense of agency in environments where personal autonomy is constrained [6].

The interrelationship between nutrition, lifestyle, and coping behaviours is particularly significant because deficits in one domain can amplify vulnerabilities in another. Poor nutrition may reduce energy and motivation to participate in physical activity, while limited opportunities for exercise can intensify the negative impact of unhealthy diets. Similarly, insufficient coping mechanisms can exacerbate stress responses, increasing the likelihood of maladaptive behaviours such as substance use or aggressive interactions. By understanding these interactions, researchers and policymakers can design interventions that holistically



address the physical and psychological needs of prisoners, fostering improved health, resilience, and rehabilitation outcomes [7].

Assessing nutrition and lifestyle in correctional settings also has broader public health implications. Inmates often come from socio-economically disadvantaged backgrounds and may have pre-existing health disparities that are intensified during incarceration. Ensuring access to nutritionally balanced meals, structured physical activity, and psychosocial support contributes not only to individual well-being but also to the overall management of public health within correctional facilities. These measures can reduce healthcare burdens, lower the risk of communicable and non-communicable diseases, and enhance post-release reintegration prospects [8].

Life Inside the Prison

Life inside a prison is a world apart from ordinary society. For inmates, every day follows a strict routine dictated by the institution. From waking up early in the morning to lights out at night, personal freedom is limited, and choices about even basic activities are often constrained. In many district prisons of Uttar Pradesh, such as those in Lucknow and Unnao, large populations are housed in facilities originally designed for far fewer inmates. Overcrowding is a common challenge, with more inmates than sanctioned capacity, which can strain infrastructure, food supply, and access to healthcare [9].

Prisoners spend most of their time in shared dormitories or cells, where space is limited and privacy is minimal. Daily life revolves around mandatory activities, including attendance at roll calls, cleaning duties, and assigned work in the prison kitchen, laundry, or workshops. The lack of personal autonomy can create stress, and inmates must carefully navigate social hierarchies and interactions to maintain safety and social harmony. Within these confined spaces, forming friendships and alliances is an important coping mechanism, allowing prisoners to support each other emotionally and sometimes even share resources [10].

Despite these challenges, prisons are also communities in their own right. Meals, recreational activities, and cultural practices provide structure and a sense of normalcy. Mealtimes are central events in the daily routine, not only as a source of nutrition but also as moments of social interaction. Access to food, however, is largely dependent on institutional supply chains, and variety is often limited. Fresh fruits, vegetables, and protein-rich foods may be insufficient, leading to monotonous diets dominated by cereals, pulses, and basic vegetables. For many inmates, the quality and quantity of meals become a constant concern, influencing both physical health and overall mood [11].

Exercise and recreation are limited but highly valued when available. In some facilities, prisoners may have access to small courtyards or exercise yards, where they can walk, stretch, or play informal sports. Such opportunities are not only important for physical well-

being but also for relieving stress and maintaining mental health. In the absence of structured exercise programs, prisoners often develop their own routines, including bodyweight exercises, stretching, or even walking within the confines of their cells [12].

Health care within prisons is another critical aspect of daily life. While basic medical attention is provided, limited resources, high inmate-to-staff ratios, and overcrowding can delay treatment. Many inmates also face pre-existing conditions upon entering prison, which may be worsened by confinement, stress, and dietary limitations. Mental health concerns, including anxiety, depression, and feelings of isolation, are prevalent. Coping mechanisms vary: some prisoners engage in reading, meditation, religious practices, or creative activities, while others rely on social networks for emotional support [13].

The prison environment also shapes behaviour and social norms. Inmates must adapt to formal rules as well as informal codes of conduct that govern interactions among peers. Respect for hierarchy, careful conflict avoidance, and mutual cooperation are essential for day-to-day survival. Such adaptations often foster resilience, but they may also reinforce inequalities and stress for those who struggle to conform. Despite these constraints, many prisoners demonstrate remarkable adaptability, developing routines and social strategies that help them navigate the challenges of incarceration while protecting their physical and mental well-being [13].

Understanding life inside prison is crucial for improving institutional policies. By examining the daily routines, social interactions, and challenges faced by inmates, authorities and health professionals can identify areas where support is most needed. Enhancing access to nutritious food, structured physical activity, and mental health resources can significantly improve quality of life. Small changes in daily routines, meal planning, or recreational opportunities can have meaningful impacts on health, behaviour, and rehabilitation outcomes, ultimately benefiting both inmates and society at large [13].

Food Matters: What Inmates Eat

In prisons, food is more than just a daily necessity-it is a central aspect of life, shaping physical health, mood, and social interaction. For inmates in Uttar Pradesh, meals are provided by the institution and follow a routine schedule. Typically, prisoners receive three main meals a day: breakfast, lunch, and dinner. While the food is designed to meet basic caloric needs, its variety and nutritional content are often limited. Most meals are heavily based on staple grains like rice, wheat, or lentils, supplemented with seasonal vegetables, pulses, and minimal dairy. Sweets or energy-dense snacks, such as jaggery or biscuits, are occasionally included, providing a quick source of energy but limited essential nutrients [12,13].

Protein is a critical component for maintaining muscle strength and overall health, yet its availability varies. In many district jails, legumes such as black gram, red lentils, and Bengal gram split form the main source of protein. Occasionally, soybean curry or roasted chickpeas are served, offering higher protein content for those meals. Animal-based protein is scarce due to cost and religious considerations, so plant-based sources dominate. While these provide essential amino acids and fibre, limited variety can affect long-term nutritional adequacy [12,13].

Vegetables and fruits are often in short supply, mainly due to storage limitations and the large number of inmates to be served. Fresh produce, which is crucial for vitamins, minerals, and antioxidants, is typically offered seasonally or in minimal quantities. Common vegetable preparations include seasonal mixed vegetables or simple curries, often cooked with minimal oil or spices. Lack of diversity in diet can lead to deficiencies, especially in micronutrients such as vitamin C, calcium, and iron, which are essential for immune function and overall health. Despite these limitations, prison meals are carefully planned to ensure that basic energy requirements are met. Carbohydrate-rich items like rice, flatbread, and porridge are staples, supplying the calories needed for daily activity. Jaggery and other sweets provide additional energy and are often distributed during festivals or special occasions. While these foods contribute to caloric sufficiency, the monotony of the menu and low micronutrient density can affect both physical well-being and mood over time [14].

Meal satisfaction plays an important role in inmate morale.



Surveys conducted in prisons in Lucknow and Unnao show that while most inmates are able to consume their meals, taste, variety, and freshness often influence satisfaction levels. Limited seasoning, repetitive menus, and lack of variety may cause dissatisfaction, potentially affecting appetite and intake. In some cases, inmates develop informal strategies to improve meals, suc h as sharing spices, bartering food items, or combining different dishes to enhance flavour. These practices highlight the creativity and adaptability of prisoners in managing dietary challenges [15].

Beverages are generally limited to tea or water, with little availability of milk or fresh fruit juices. Tea, often sweetened and served in small portions, becomes a source of comfort and a routine part of daily life. Nutritional counselling or education is rarely available, and many inmates are unaware of the full impact of their diet on health. Incorporating simple nutrition awareness programs could help prisoners make better food choices and optimize the limited resources available to them. Maintaining hygiene and food safety is also essential. Meals are prepared in centralized kitchens under strict supervision, but challenges such a s overcrowding, high humidity, and delayed serving can sometimes compromise freshness. High-moisture dishes, like porridge or vegetable curries, may spoil faster, increasing the risk of microbial contamination. Dry foods, like roasted legumes and biscuits, have better shelf life but provide limited nutrients. Understanding the relationship between food quality, safety, and health is vital for institutional meal planning [16].

Keeping Healthy: Physical Activity and Lifestyle

Physical activity is a cornerstone of health, and this holds true even within the confines of a prison. Incarcerated individuals face unique challenges in maintaining fitness due to limited space, structured routines, and institutional restrictions. Despite these constraints, exercise remains essential for both physical and mental well-being. In many district prisons of Uttar Pradesh, including Lucknow and Unnao, inmates are provided access to small open courtyards or yards, which serve as areas for walking, stretching, and informal games. While these spaces may be modest, they offer vital opportunities to relieve stress, improve circulation, and maintain muscle strength. Routine physical activity in prison often revolves around a combination of scheduled exercises, assigned duties, and self-initiated movement. Inmates may participate in light jogging, stretching, bodyweight exercises such as push-ups and squats, or yoga when space permits. Even simple practices like walking around the yard or performing stretching exercises in cells can make a significant difference in maintaining cardiovascular health, flexibility, and overall energy levels. Structured group activities, when available, also promote social interaction, teamwork, and a sense of accomplishment [16, 17].

Beyond physical fitness, exercise has profound effects on mental health. Studies have consistently shown that regular activity helps reduce anxiety, depression, and irritability- common challenges faced by incarcerated populations. Physical activity releases endorphins, the body's natural mood elevators, helping inmates cope with stress and the psychological demands of confinement. In settings with limited recreational options, these exercises provide not only health benefits but also a constructive way to spend time, reducing boredom and negative behaviours. Lifestyle practices in prisons extend beyond exercise. Maintaining personal hygiene, adhering to sleeping routines, and following dietary guidance all contribute to well-being. Hygiene routines, including bathing, handwashing, and cleanliness of personal areas, are essential for preventing illness in overcrowded environments. Sleep is also closely tied to health; adhering to regular sleep schedules helps regulate mood, metabolism, and immune function. In some facilities, lights-out policies establish a fixed routine that supports rest, although overcrowding and

noise can sometimes interfere with sleep quality [18].

Recreational activities, such as reading, meditation, or arts and crafts, complement physical routines and support mental health. Some prisons offer organized programs, including educational workshops, meditation sessions, or light sports, providing inmates with meaningful engagement. Participation in these activities promotes psychological resilience, fosters a sense of purpose, and helps build routines that mirror healthy lifestyles outside prison. Inmates often develop their own strategies to maintain health. Those unable to access structured exercise may use creative methods within their cells, such as performing chair-based exercises, stretching against walls, or simple resistance training using body weight. Such initiatives highlight the adaptability of prisoners in prioritizing health despite constraints. Peer support is also crucial; experienced inmates frequently guide newcomers on safe exercise practices and ways to stay active, reinforcing communal bonds while promoting well-being. Institutional support can further enhance the effectiveness of lifestyle interventions. Providing basic equipment, creating designated exercise areas, and incorporating short group sessions can encourage participation and ensure safety. Education on the importance of physical activity and its connection to diet and mental health can empower inmates to take proactive steps toward wellness. Small changes, such as encouraging morning walks, organizing yoga or stretching routines, or offering indoor exercise guidance, can significantly impact both physical fitness and mental resilience [19].

Coping in Confinement

Life in prison is challenging, both physically and mentally. Inmates face restrictions on freedom, structured routines, and limited resources, which can create stress and tension. To navigate this environment, prisoners develop various coping strategies that help them manage daily challenges and maintain a sense of control over their lives. One important way inmates cope is through social interaction. Friendships and peer support networks form the backbone of daily life. Sharing food, stories, or advice provides emotional support and a sense of community. Inmates often rely on each other for guidance on routines, health practices, and navigating prison regulations. This social bonding not only reduces feelings of isolation but also helps maintain mental well-being. Structured activities and hobbies also play a key role in coping [19]. Many inmates engage in reading, meditation, writing, or simple games during free time. These activities offer mental stimulation, provide a sense of purpose, and act as a healthy distraction from stress. In some prisons, organized programs, such as yoga or educational sessions, further support adaptive behaviours and personal growth. Religious and cultural practices are another significant coping mechanism. Daily prayers, festivals, or rituals create familiar patterns that bring comfort and stability. Celebrating special occasions, even in confinement, fosters hope, strengthens social bonds, and reinforces identity. Physical activity, though sometimes limited by space, also contributes to coping. Exercise helps reduce tension, improves mood, and provides a constructive outlet for energy. Simple routines like walking in the yard, stretching, or bodyweight exercises can have positive effects on both physical and mental health [18, 19].

Safety on the Plate: Hygiene and Food Quality

Food is not just nourishment; it is a cornerstone of health, particularly in correctional facilities where inmates rely entirely on institutional meals. In prisons, ensuring food safety is critical because any lapse can quickly affect a large number of people. Overcrowded conditions, limited storage facilities, and mass meal preparation make hygiene a constant challenge. High-moisture foods, such as cooked lentils, vegetable curries, and porridge, are especially vulnerable to bacterial growth. If not cooked, stored, and served properly, these items can become breeding grounds for microorganisms, leading to foodborne illnesses. Dry foods such as roasted chickpeas, jaggery, and biscuits are comparatively safer, as their low water content makes bacterial growth less likely. Proper handling practices are essential to maintain safety. Kitchen staff must follow strict hygiene, including washing hands, cleaning utensils thoroughly, and using sterilized storage containers. Meals should be covered and kept at appropriate temperatures to prevent contamination. Even small

practices, like separating raw and cooked ingredients and ensuring regular cleaning of preparation surfaces, significantly reduce risks. Microbiological safety is only part of the story. Physicochemical properties such as pH, water activity, and texture also influence food quality and shelf life. Foods with higher water activity tend to spoil faster, while acidic items resist bacterial growth better. Texture and firmness can indicate proper preparation and freshness, contributing to both safety and palatability. For instance, soft-cooked rice and vegetables need to be consumed quickly, while hard or dry items remain safe for longer periods [20].

Regular monitoring of food quality is important. Testing meals for microbial counts and checking for spoilage ensures that inmates receive safe meals. In addition, simple inspections of ingredients, cooking methods, and storage practices can prevent contamination before it occurs. These measures not only protect physical health but also foster confidence and satisfaction among inmates regarding their daily meals. Beyond safety, the quality of meals also affects nutritional adequacy. Even a hygienically prepared meal may be insufficient if it lacks essential proteins, vitamins, and minerals. Pulses, legumes, and seasonal vegetables provide vital nutrients, while energy-dense items like jaggery or biscuits supply quick calories. Ensuring both safety and nutritional value is therefore essential to support inmates' health, immunity, and overall well-being [20].

Understanding Nutrients: Why Food Quality Matters

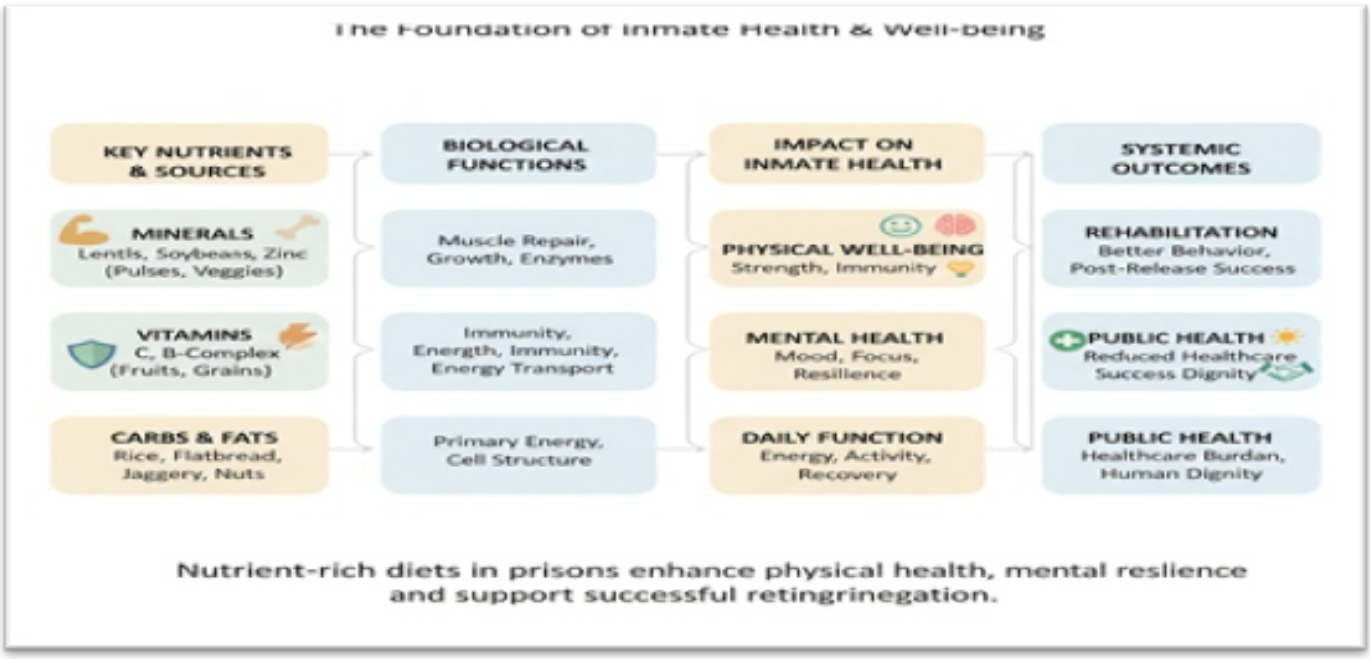
Food is more than just a source of energy-it is the foundation of health. Each meal we eat supplies nutrients that support our body, mind, and overall well-being. In institutional settings like prisons, where inmates rely entirely on provided meals, ensuring nutrient-rich food is especially important. Balanced meals help maintain immunity, support mental health, and provide energy for daily activity [21,22].

Protein: Building and Repairing the Body

Protein is a key nutrient for growth, repair, and overall strength. It is essential for muscles, skin, and organs, and it plays a critical role in producing enzymes and hormones. In prison meals, legumes such as lentils, black gram, pigeon peas, and soybean curry are the main sources of protein. Roasted chickpeas and nuts also add healthy protein and fats. Consuming enough protein helps inmates maintain muscle mass, recover from illness, and stay physically active, even in restricted environments [23].

Minerals: Supporting Vital Functions

Minerals are essential for numerous bodily processes. Calcium, found in pulses and some vegetable dishes, is vital for strong bones and teeth. Iron, abundant in lentils and beans, supports oxygen transport in the blood, preventing fatigue and



weakness. Magnesium and zinc contribute to immune function, metabolism, and overall health. In institutional diets, pulses, vegetables, and seasonal produce are the main sources of these minerals, but limited variety may result in gaps. Ensuring regular intake of mineral-rich foods is key for preventing deficiencies and maintaining long-term health [24,25].

Vitamins: Fuelling Immunity and Energy

Vitamins, though needed in small amounts, are critical for the proper functioning of the body. B-vitamins from pulses and grains help convert food into energy and support brain function. Vitamin C, often provided by seasonal fruits and vegetables, boosts immunity and aids wound healing. A deficiency in vitamins can lead to fatigue, poor immunity, and even mental health issues such as irritability or low mood. A nutrient-balanced diet helps inmates maintain alertness, cognitive function, and emotional stability [26].

Carbohydrates and Fats: Energy and Cell Function

Carbohydrates, mainly supplied by rice, flatbreads, and jaggery in prison meals, provide energy for daily activity. They are the body's primary fuel source. Fats, though required in smaller quantities, are essential for the absorption of fat-soluble vitamins, hormone production, and brain function. Nuts, seeds, and cooking oils in meals contribute to healthy fat intake. Balancing carbohydrates with protein and fibre ensures steady energy and prevents fatigue or digestive issues [26].

Diet Diversity and Mental Health

Variety in food is not just about taste-it directly affects health. A diet that includes legumes, grains, vegetables, fruits, and occasional snacks provides a spectrum of nutrients needed for physical and mental well-being. Studies show that nutrient-rich diets improve mood, reduce irritability, and enhance concentration. Conversely, repetitive, nutrient-poor diets can lead to fatigue, frustration, and weakened immunity [27].

Why Food Quality Matters in Prisons

In correctional facilities, meals are more than sustenance-they influence health, behaviour, and quality of life. Safe, balanced, and nutrient-dense meals support energy, immunity, and mental resilience. By paying attention to protein, minerals, vitamins, carbohydrates, and fats, prison kitchens can provide food that is not only safe but also nourishing. Even in limited-resource environments, small adjustments like including more legumes, vegetables, and seasonal fruits can make a significant difference [27].

Challenges and Opportunities

Running a prison may be about maintaining law and order, but it also comes with a responsibility to ensure the health and well-being of inmates. While prisons provide basic meals and shelter, several challenges make it difficult to fully meet the nutritional and lifestyle needs of incarcerated populations. One of the main challenges is overcrowding. Many prisons in Uttar Pradesh house more inmates than their intended capacity, creating pressure on resources, including food, space, and healthcare. Overcrowding limits the variety and quantity of food available, making it difficult to maintain balanced diets. It also reduces opportunities for physical activity, as limited space restricts outdoor exercise and recreational activities [23, 28].

Another significant challenge is limited access to nutritious foods. Institutional meals often rely on staple grains and pulses, with fruits and vegetables provided in smaller amounts or only occasionally. While pulses, legumes, and cereals meet basic energy needs, inmates may not receive sufficient vitamins and minerals to maintain optimal health. Snacks such as jaggery, biscuits, and bread rolls supply quick energy but lack essential micronutrients, contributing to a gap in overall diet quality. Meal satisfaction is also a concern. Taste, freshness, and variety influence whether inmates consume their meals fully and feel satisfied. Dissatisfaction can lead to informal food coping strategies, such as sharing, bartering, or altering meals, which may compromise hygiene and nutritional intake. Without structured feedback systems or nutrition education, it is difficult to improve meal quality systematically [29].

Physical activity and lifestyle opportunities are another area of challenge. Inmates' daily routines are often rigid, with limited access to structured exercise or recreational activities. Physical inactivity, combined with repetitive and carbohydrate-heavy diets, can increase the risk of weight gain, cardiovascular issues, and reduced mental well-being. Despite these challenges, there are several opportunities for improvement. One is

enhancing nutritional awareness and education. Simple programs can teach inmates about balanced diets, proper portion sizes, and the importance of consuming pulses, vegetables, and fruits. Knowledge empowers individuals to make healthier choices even within restricted food systems [30].

Another opportunity is menu diversification and quality improvement. Introducing seasonal vegetables, legumes, and minimal snacks with higher nutrient content can improve both health and meal satisfaction. Collaboration with nutritionists or local food experts could help design cost-effective menus that meet calorie and nutrient requirements. Structured physical activity programs are also feasible and highly beneficial. Activities such as morning exercises, yoga sessions, or simple outdoor games can improve both physical fitness and mental resilience. Encouraging inmates to participate in such programs could reduce stress, improve mood, and contribute to overall health [30].

Lessons for Society

Prison nutrition and lifestyle do not only affect inmates-they reflect broader public health, social responsibility, and human rights. Ensuring that incarcerated individuals receive safe, nutritious meals and opportunities for physical activity is not merely a matter of compliance; it is a commitment to dignity, well-being, and rehabilitation. Well-nourished inmates are less likely to develop chronic diseases, mental health issues, or behavioural problems, which reduces the long-term burden on healthcare systems and society after their release [29, 31].

Structured nutrition education, balanced meals, and opportunities for exercise in prisons also teach habits that inmates can carry beyond incarceration, supporting successful reintegration into their communities. By addressing dietary inadequacies, providing knowledge, and encouraging healthy routines, prisons can foster resilience, reduce recidivism, and promote social stability. Furthermore, attention to hygiene, food safety, and nutrient adequacy emphasizes that access to proper food is a fundamental human right. Society benefits when prisons uphold these standards, as healthier, rehabilitated individuals are better equipped to contribute positively after release. In this way, the lessons learned within correctional institutions-about nutrition, lifestyle, and care- resonate beyond the walls of the facility, guiding broader public health policies, promoting equity, and reinforcing the ethical responsibilities of government and community alike [28, 31].

Conclusion

Life inside prison is shaped by strict routines, limited freedom, and heavy dependence on institutional support for food, health care, and physical activity. In the district prisons of Uttar Pradesh, overcrowding and resource constraints place additional pressure on these systems, directly influencing inmate health and quality of life. Nutrition, lifestyle, hygiene, and coping behaviours are deeply interconnected and together determine both physical and psychological well-being. Institutional diets, while generally sufficient in calories, often lack diversity and micronutrient richness. Limited access to fresh fruits, vegetables, and high-quality protein can gradually weaken immunity, energy levels, and mental resilience. When combined with sedentary routines and restricted recreational opportunities, these dietary limitations increase vulnerability to chronic disease, fatigue, and emotional stress. Yet, inmates show notable adaptability by developing social networks, personal exercise routines, religious practices, and creative coping strategies to protect their health within constrained environments.

Improving prison nutrition and lifestyle does not require radical change but thoughtful, practical action. Menu diversification with seasonal produce, nutrition education, structured physical activity programs, and strict food hygiene monitoring can significantly enhance well-being. Supporting mental health through recreation and social engagement further strengthens rehabilitation outcomes. Ultimately, prisons are not isolated from society; they are part of the public health system. Ensuring safe, nutritious food and healthy routines upholds human dignity and prepares inmates for successful reintegration. Investing in inmate health benefits not only individuals behind bars but also the communities to which they will return.

References

1. Almoayad, S., et al. (2023). *Nutritional quality of institutional menus and chronic disease risk*. Public Health Nutrition, 26(1), 45–55.

https://doi.org/10.1017/S1368980022000478

2. Bain, L. E., et al. (2024). *Hidden hunger and micronutrient deficiencies in institutionalized populations*. Nutrients, 16(5), 1014. https://doi.org/10.3390/nu16051014
3. Colinso, B. B., et al. (2025). *The relationship between physical activity, mental health, and coping strategies among male prisoners*. Healthcare. https://doi.org/10.3390/healthcare6040153
4. Cortie, C., et al. (2020). *Diet quality in correctional facilities and associated health outcomes*. Public Health Nutrition. https://doi.org/10.1017/S1368980020001234
5. Davis, A. C., et al. (2023). *Anthropometric and dietary assessment in incarcerated populations*. Journal of Correctional Health Care, 29(4), 300–315. https://doi.org/ 10.1089/jchc.23.00005
6. Gebremariam, M., et al. (2018). *Diet and health outcomes in prisons: A case study*. Global Health Journal, 2(4), 230–240. https://doi.org/10.1016/j.glohj.2018.10.005
7. Hamm, M. W., et al. (2024). *Food safety and hygiene in institutional kitchens*. Food Control, 150, 109815. https://doi.org/10.1016/j.foodcont.2023.109815
8. Kraft, C., Gröben, B., & Wicker, P. (2025). *Physical activity and sedentary behavior profiles among prisoners: Differences in psychological well-being*. BMC Public Health, 25, 2999. https://doi.org/10.1186/s12889-025-24345-0
9. LeBlanc, C. P., et al. (2024). *The nutritional content of food in carceral institutions*. Journal of Correctional Health Care. https://doi.org/10.1089 jchc.23.10.0087
10. Liguori, F., & Calella, P. (2024). *Physical activity and wellbeing in prisoners: A scoping review*. International Journal of Prison Health. https://doi.org/10.1108/IJOPH-07-2024-0038
11. Lopez, N. (2022). *Assessing caloric and nutrient intake in male prisons*. BMC Nutrition. https://doi.org/10.1186/s40795-022-00593-w
12. Lopez, N. V., Spilkin, A., Brauer, J., et al. (2022). *Nutritional adequacy of meals and commissary items provided to individuals incarcerated in a southwest, rural county jail in the United States*. BMC Nutrition, 8, 96. https://doi.org/10.1186/s40795-022-00593-w
13. Mainous, A. G. (2022). *Dietary patterns and psychological well-being*. Journal of Mental Health and Nutrition, 7(1), 15–27. https://doi.org/10.1017/jmhn.2022.009
14. Meek, R., & Lewis, G. (2014). *Sport and physical culture in prisons: Past and present*. Journal of Physical Education & Sport, 14(2), 240–245. https://doi.org/10.7752/jpes.2014.02036
15. Morgan, K., et al. (2024). *Food choice and cultural identity in incarceration*. Appetite, 176, 106071. https://doi.org/ 10.1016/j.appet.2023.106071
16. Mutz, M., & Müller, J. (2023). *Health decline in prison and the effects of sporting activity: Results of the Hessian prison sports study*. Health & Justice, 11, 34. https://doi.org/10.1186/s40352-023-00237-6
17. Nguyen, T. T., et al. (2025). *Diet diversity and inmate morale: Evidence from multicountry prison surveys*. Global Public Health, 20(2), 215–230. https://doi.org/10.1080/17441692.2024.999888
18. Poulter, M., Coe, S., Graham, C. A., Leach, B., & Tammam, J. (2024). *A systematic review of the effect of dietary and nutritional interventions on the behaviours and mental health of prisoners*. British Journal of Nutrition, 132, 77-90. https://doi.org/ 10.1017/ S0007114524000849
19. Robinson, L. E. (2018). *Nutrition and mental health in restricted populations*. Nutrition & Mental Health Journal, 10(4), 199–210. https://doi.org/10.1016/j.nmhj.2018.07.002
20. Sanchez, J. P., et al. (2023). *Diet quality and mental health outcomes in incarcerated populations*. Public Health Nutrition. https://doi.org/10.1017/S1368980023000756
21. Sanjeet, K., Mishra, S. (2024). Behind bars: Evaluating the nutritional landscape - A review of dietary patterns provided in correctional facilities. Food Systems, 7(4), 585-589. https://doi.org/10.21323/2618-9771-2024-7-4-585
22. Sanjeet, K., Mishra, S., Kumar, N., Parveen, Z., & Singh, R. (2025). *Nutritional awareness, dietary practices, and coping behaviours among incarcerated males in prisons of Uttar Pradesh, India*. Discover Social Science and Health, 5(1), 165. https://doi.org/10.1007/s44155-025-00333-y
23. Smith, P. M., & Young, M. (2023). *Health promotion in correctional environments*. Health Promotion International, 38(2), daac012. https://doi.org/10.1093/heapro/daac012
24. Stanikowski, G., et al. (2020). *Institutional food services and inmate health outcomes*. Journal of Correctional Nutrition. https://doi.org/10.1002/jcn.12055.
25. Thomas, E. (2022). *Chronic disease prevalence among incarcerated populations*. International Journal of Prison Health, 18(3), 215-225. https://doi.org/10.1108/IJPH-10-2021-0067
26. Thomas, R. E. (2022). *Dietary influences on inmate mental health*. Psychiatry Research, 310, 114453. https://doi.org/10.1016/j.psychres.2022.114453
27. Verma, S., & Basu, A. (2024). *Micronutrient intake and prison health outcomes in LMIC contexts*. Nutrition Research, 61, 75–87. https://doi.org/10.1016/j.nutres.2024.01.006
28. Vetrani, C., et al. (2024). *Nutritional interventions in prison settings: A scoping review*. Nutrition Reviews, 83(2), 397-404. https://doi.org/10.1093/nutrit/nuae011
29. Wondimu, M., et al. (2023). *Undernutrition and associated health factors among incarcerated adults*. Frontiers in Nutrition, 10, 1144654. https://doi.org/10.3389/fnut.2023.1144654
30. Woods, D., Breslin, G., & Hassan, D. (2017). *A systematic review of sport-based interventions on psychological well-being in prison*. Mental Health and Physical Activity, 12, 29-40. https://doi.org/10.1016/j.mhpa.2017.02.003
31. World Health Organization. (2021). *WHO Health in Prisons Programme (HIPP): Framework and guidelines*. https://doi.org/10.1093/heapro/daaa097

Bio-Technology

Peer Reviewed

Development of Banana Plantlets through Micro propagation Techniques

Uttam Kumar, R. S. Sengar, Nidhi Singh & Garima Sharma

Introduction

Banana (Musa spp.) is not only a fruit but also a food security crop, a livelihood avenue, and an income generator for millions of producers across the globe, more especially the tropical and subtropical nations. It is a perennial crop and can be sustained for up to 7 years or more. India is the world's largest producer of banana, accounting for almost 25% of global production. In India, bananas can only rank second after the mangoes in area and production and therefore provide an agricultural lifeline for small and marginal holders. Major banana producing states are Andhra Pradesh, Maharashtra, Tamil Nadu, Karnataka and Gujarat. In Uttar Pradesh, cultivation of banana spread over more than 68,000 hectares. The leading banana producing districts in Uttar Pradesh are – Lakhimpur Khiri, Kushinagar, Maharajganj, Prayagraj and Kaushambi. However, where they are quite prominent, one of the principal problems in banana production is the procurement of healthy and uniform plant material.

Traditionally, bananas were propagated through suckers. Although it is simple, it is a slow process and produces only a few plants. Worse, suckers typically carry pests and plant diseases from the mother plant and cause lower yields and greater losses. This is where has Science stepped in to the rescue with a novel technology—micro propagation through tissue culture.

What is Micro propagation?

Micropropagation involves the culture of vast quantities of similar plants from small plant tissue under sterile and regulated laboratory situations. In vitro clonal proliferation is another name for it. In bananas, the technique benefits from the totipotency of the plant —i.e., the capacity of the single cell to regenerate into an entire plant if proper environment is presented.



Fig. 1. Working on Laminar Air Flow for Plant Inoculation

No longer do they require gigantic suckers; they can start with tiny fragments of meristem tissue, culture them on nutrient media, and recover thousands of single, uniform, and virus-free banana plantlets.

Advantages of Banana Micro propagation

- **High multiplication rate**: Thousands of plants can be derived from a single explant.
- **Disease-free plants**: Meristem culture eliminates systemic pathogens.
- **Genetic uniformity**: Clonal propagation ensures identical progeny.
- **Year-round production**: Independent of seasons.
- **Synchronized growth**: Enables uniform flowering and harvesting.
- **Economic benefits**: High benefit–cost ratio for farmers

Timeline for Banana Tissue Culture

Banana plantlet production through tissue culture is a multi-step process the length of which for each step is predetermined:

Culture initiation: 3–4 weeks for the initiation of the shoot tip.

Division of Plant Biotechnology, College of Biotechnology, Sardar Vallabhbhai Patel University of Agriculture and Technology, Meerut
**Corresponding author email : rudrapsingh.doc@gmail.com*



Fig. 2. Banana Plantlets

Shoot multiplication: subculture cycle of 4–6 weeks; 5–7 cycles.

Rooting: 2–3 weeks.

Hardening (shade net + greenhouse): 6–8 weeks.

Field-ready plantlets: ~5–6 months from the day of explant initiation.

So, within 150–180 days, a small meristem develops into a full-fledged banana plantlet for the farm.

Tissue culture banana plant prices

The cost per plant of tissue-cultured (TC) banana plantlets available in Indian commercial nurseries ranges from ₹12–15.

Farmers normally require 1,800–2,000 plants per acre (~5,000 plants per hectare)

Sowing one hectare would cost around ₹60,000–75,000.

Although the start-up cost is higher compared to growing with suckers, the payoff is greater because of the superior quality and harvest.

Benefits for Farmers per Hectare

Yield benefit: Tissue cultured bananas produce 60–80 tonnes/ha, versus the 30–40 tonnes/ha from classical.

Uniform maturity: The plants flower and fruit at one time, enabling single harvest and labour-saving.

Disease-free plants: Losses reduced from Panama wilt, viruses, and nematodes.

Higher incomes: Under market prices, a representative farm can receive ₹2.5–3 lakh per ha, typically twice the net returns of the conventional system

Plant tissue culture establishment cost of a unit

Set up of Plant Tissue Culture (PTC) unit involves special facilities:

Small-scale laboratory (capacity: 1–2 lakh plantlets/year): ~₹25–30 lakh.

Medium-scale commercial unit (5–10 lakh plantlets/year): ~₹50–60 lakh.

Industrial scale plant (>20 lakh plantlets/a): ₹1 crore or more, depending on automation and bioreactors.

In spite of the investment, private laboratories and cooperative undertakings make it worthwhile since the demand for tissue-cultured banana plantlets is strong and increasing.

Life Cycle of Banana Plantlet

Mother Plant Selection: Healthy sword suckers from disease-free plants (50-60 days old).

Aseptic Culture Initiation:

1. Wash explants under running tap water (15–20 min).
2. Treat with detergent solution (0.1% cetrimide, 10 min).
3. In laminar hood:
   - Dip in 70% ethanol (30–60 sec).



Fig. 2. Banana Plant

   - Treat with 0.1% Hg-Cl_2 (8–10 min) or 2% NaOCl (15–20 min).
   - Rinse 3–4 times with sterile distilled water.

Shoot Multiplication: Meristems sterilised and sown upon MS medium. Clusters of shoots generated using cytokinin. 6-7 subculture cycles produce large clusters of shoots.

Rooting: Transplanting plantlets(4-5cm) into auxin-containing medium. Roots within 2-3 weeks.

Hardening and Acclimatization:

Primary Hardening- Plantlets washed free of agar, transferred to trays with cocopeat/sand under greenhouse (24-26 C, 90-95% humidity, diffused light).

Secondary Hardening- Transfer to polybags with soil: sand:FYM (1:1:1), fungicide dip (e.g., 0.1% Bavistin) prevents infections.

Planting Field: Transplant into the field when plantlets are ~6 months old. Survival rates exceed 90% under proper management.

Conclusion

Banana tissue culture has transformed banana agriculture. Within six months, a tiny drop of meristem under the microscope develops into a stately plantlet. With a minimal investment of just ₹12–15 per plant, the farmers can plant healthy, uniform, pathogen-free crops yielding almost double the output as compared to the traditional system. Bananas are grown on >0.9 million ha, with continuous demand for disease-free plants. With tissue culture plants yield increase to 60-80 tonnes/ha compared to 30-40 tonnes/ha with suckers. For the farmers, it means higher yields, balanced harvests, better quality bananas, and more stable incomes. For India, it means better food security, better export opportunities, and sustainable agriculture. Tissue culture is more than a laboratory technique—it is a tool of empowerment for rural farm communities.

उपलब्धि

नृत्य में सम्मान

लक्ष्य मिश्रा ने 'नशा मुक्त युवा फॉर विकसित भारत' जिला स्तरीय सांस्कृतिक प्रतियोगिता 2026 में जीता द्वितीय पुरस्कार

12 अगस्त 2026 को लखनऊ के माय भारत लखनऊ में आयोजित 'नशा मुक्त युवा फॉर विकसित भारत' जिला स्तरीय सांस्कृतिक प्रतियोगिता 2026 में युवा स्वतंत्र कलाकार लक्ष्य मिश्रा ने नृत्य श्रेणी में द्वितीय पुरस्कार प्राप्त किया। यह प्रतियोगिता युवा कार्यक्रम एवं खेल मंत्रालय, भारत सरकार के अंतर्गत आयोजित की गई।

प्रतियोगिता में प्रतिभागियों को पाँच से आठ मिनट की एक कोरियोग्राफ की गई नृत्य प्रस्तुति प्रस्तुत करनी थी। इसके लिए शास्त्रीय, लोक या समकालीन नृत्य शैली में से किसी एक का चयन किया जा सकता था। लक्ष्य मिश्रा ने समकालीन नृत्य शैली को चुना और अपनी प्रस्तुति के लिए माइकल जैक्सन के 'Billie Jean' और 'Dangerous' गीतों को संगीत के आधार के रूप में लिया।

इस प्रस्तुति को किसी श्रद्धांजलि या अनुकरण के रूप में प्रस्तुत करने के बजाय लक्ष्य ने इन लोकप्रिय गीतों को अपनी स्वयं की कोरियोग्राफी और प्रस्तुति शैली के माध्यम से व्याख्यायित किया। परिचित संगीत को अपनी नृत्य-भाषा में ढालना उनकी प्रस्तुति की प्रमुख विशेषताओं में रहा।

यह द्वितीय पुरस्कार लक्ष्य मिश्रा की एक स्वतंत्र कलाकार और युवा परफ़ॉर्मर के रूप में यात्रा में एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है। यह सम्मान केवल प्रतियोगिता



में प्राप्त स्थान का संकेत नहीं है, बल्कि उनके मंचीय आत्मविश्वास, रचनात्मक दृष्टिकोण और परिचित संगीत को अपनी कलात्मक अभिव्यक्ति में बदलने की क्षमता को भी दर्शाता है।

लखनऊ की समृद्ध सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के बीच यह उपलब्धि युवा कलाकारों में विकसित हो रही समकालीन अभिव्यक्ति को भी सामने लाती है। एक ओर शहर की अपनी गहरी शास्त्रीय नृत्य परंपरा है, वहीं दूसरी ओर आज के युवा कलाकार वैश्विक संगीत, समकालीन नृत्य और डिजिटल संस्कृति से प्रभावित होकर अपनी अलग रचनात्मक पहचान विकसित कर रहे हैं।

लक्ष्य की प्रस्तुति में संगीत परिचित था, लेकिन उसकी व्याख्या और मंचीय अभिव्यक्ति उसकी अपनी थी। 12 अगस्त 2026 को इसी कलात्मक प्रस्तुति ने उन्हें जिला स्तरीय मंच पर द्वितीय पुरस्कार दिलाया।

Environment

Peer Reviewed

From Kitchen to the Air we breathe: Indoor Cooking and Particulate Matter Emissions

Mayuri Wakade & Sushmitha Baskar*

Abstract

Household cooking contributes to particulate matter (PM) emissions, especially in developing countries. Urban and rural cooking practices differ due to variations in income, education, fuel availability, and the types of cooking technologies used. Rural households largely depend on traditional biomass fuels, leading to higher indoor PM exposure, while urban households increasingly use cleaner fuels such as LPG or electric-based cooking stoves. Several factors influence PM emissions from cooking, including type of fuel, stove efficiency, ventilation, cooking duration, and socio-economic conditions. Fine particulate matter results in respiratory and cardiovascular diseases, and also contributes to environmental impacts such as black carbon emissions and climate change. Government initiatives, such as the Pradhan Mantri Ujjwala Yojana (PMUY), have promoted the adoption of clean cooking fuels and reduced reliance on solid biofuels. However, maintaining regular use of clean fuels remains a challenge due to affordability issues. Mitigation strategies including cleaner fuels, improved cookstoves, better kitchen ventilation, awareness programs, and supportive policies are essential to further reduce PM emissions from household cooking. This short review discusses on indoor pollution due to particulate emissions from cooking practices in rural and urban kitchens.

Keywords: Particulate matter, Indoor pollution.

Introduction

Whenever we hear the term air pollution, the first thing that comes to our mind are industrial emissions, traffic exhaust, and smog. Indoor air pollution, however often remains unnoticed where we spend most of our time. Our own kitchen acts as a factory for indoor pollution, where everyday activities such as cooking become a major contributor to respirable suspended particulate matter and nanoparticle exposures in household environments (Lachowicz et al., 2022). During cooking, a mixture of gases, smoke, and fine particles released directly affect human health. As cooking is a regularly practised activity in almost every household, it becomes important to understand how cooking-related pollution impacts our health.

Let us first understand particulate matter and its classification based on aerodynamic diameter. Particulate matter refers to a mixture of solid particles and liquid droplets suspended in the air. Based on their size, these particles are commonly classified as PM 10, PM 2.5, and ultrafine particles (Thangavel et al., 2022; Abdullahi et al., 2013) shown in Table 1.

Thangavel et al. (2022)

Table 1. Types of PM and their sources

S.No.	Types PM	Size of Particles (micrometers)	Natural Sources	Man-made Sources	Reference
1.	PM 10	<= 10	Dust, Sea Spray	Road dust, burning fossil fuels	Thangavel et al., 2022 Abdullahi et al., 2013
2.	PM 2.5	<= 2.5	Wildfire, volcanic eruption, pollens	Industrial and combustion emissions	Thangavel et al., 2022 Abdullahi et al., 2013
3.	Ultrafine particles	<=0.1	Volcanic eruption, wildfires	High temperature combustion activities	Thangavel et al., 2022 Abdullahi et al., 2013

Discipline of Environmental Studies, School of Interdisciplinary and Trans – Disciplinary Studies
Indira Gandhi National Open University, New Delhi - 110068
**Corresponding author email : sushmithab@ignou.ac.in;*

reported that there exists a direct relationship between particle size and its impact on human health. PM 10 particles are relatively larger and tend to deposit in the upper respiratory tract leading to irritation and inflammation. Finer PM 2.5 particles can penetrate deeply into the lungs, and can cause corrosion of the alveolar wall. Lachowicz et al. (2022) further reported that ultrafine particles are capable of crossing the lung barrier and entering the bloodstream which may be translocated to the brain. Inhalation of these particles can induce oxidative stress in the body which may trigger inflammatory responses. Thus, although particulate matter is often invisible to the naked eye, its effects on human health are clearly visible. The emission of particulate matter during cooking depends on several factors, including the type of fuel used, the cooking duration, kitchen ventilation and socio-economic status. In the following sections, the influence of these factors on particulate matter emissions will be discussed in detail and possible mitigation strategies.

Urban Vs Rural Cooking Practices and Particulate Matter

There exists a significant difference in cooking patterns between urban and rural localities particularly in terms of fuel choice and associated particulate matter (PM) emissions. A comparative survey conducted in Lucknow reported that 100% of the sampled urban households used LPG as a cooking fuel, while 80% of rural households relied on traditional non-LPG fuels (Shukla and Dutta, 2022). The authors highlighted a clear urban-rural divide in cooking fuel choice and suggests different levels of indoor particulate matter exposure (Shukla and Dutta, 2022). Their study further revealed the socio-economic differences between urban and rural households which are detailed. Urban respondents were predominantly engaged in private jobs, business, or government jobs, whereas rural households largely depended on daily wage labour, agriculture and informal private employment, reflecting clear income differences between urban and rural households (Shukla and Dutta, 2022). In their study sharp no rural respondents were reported as graduates, compared to 53% of urban respondents. This difference influenced cooking fuel and technology used. In addition, the authors highlighted a strong gender dimension of indoor air pollution, with approximately 97% of cooking activities performed by women. Modern cooking fuels such as LPG reduce cooking duration and exposure time compared to rural households (Shukla and Dutta, 2022). Further they reported average indoor PM 2.5 concentrations of urban and rural households as 1.3 and 7.8 times higher than the outer PM 2.5 concentrations respectively. Similarly, the indoor PM 10 concentrations in urban and rural households were 1.2 and 4.8 times higher than the outer PM 10 concentrations respectively (Shukla and Dutta, 2022). Figure 1 shows the rural cooking practices using traditional fuels and Figure 2 shows the urban kitchen using cleaner fuels and exhaust fans.



Fig. 1. Rural household cooking practices using traditional fuels with limited ventilation.

Source: Wikimedia.commons.org



Fig. 2. Urban kitchen showing advanced fume hoods and cooking stove using cleaner fuel.

The comparative differences shown in Table 2, highlights a clear urban-rural divide in cooking fuel choice, ventilation, stove designs, and exposure duration, all of which collectively influence indoor particulate matter emissions. Rural households, characterized by lower income and educational levels, longer cooking durations, and continued dependence on traditional fuels, make them vulnerable to indoor air pollution. Therefore, it is important to understand the key factors influencing emission of PM which are discussed in the following section.

Table 2: Comparison between Urban and Rural Kitchens.

S. No.	Factors Considered	Rural Households	Urban Households
1.	Type of fuel	Firewood, crop residue, cow dung cakes and coal	LPG, Electricity
2.	Type of Stove Used	Traditional Chulha (mud stove)	Gas Stove, electric stove
3.	Ventilation technologies	Natural ventilation such as open window and door	Chimneys, exhaust fans and windows,
4.	Kitchen Design	Semi open or separate outdoor kitchen	Structured but small spaced enclosed kitchen
5.	Cooking Duration	Longer cooking duration due to slow combustion of solid fuels	Reduced cooking duration due to higher fuel efficiency

Factors Influencing the PM emissions

1) ***Type of cooking fuel:*** The type of cooking fuel plays a critical role in determining PM emissions from household cooking activities. Empirical studies indicate that traditional biomass stoves emit substantially higher levels of PM and black carbon compared to cleaner fuels. Islam et al. (2021), reported that LPG stoves produced approximately 90% lower particulate and black carbon emissions compared to conventional biomass stoves, while improved biomass stoves showed intermediate emission levels. Transitioning from solid biomass fuels to cleaner fuels such as LPG can significantly reduce household particulate emissions (Islam et al., 2021).

2) ***Kitchen Ventilation and Design:*** Kitchen ventilation plays an important role in influencing indoor particulate matter concentrations during cooking. Inadequate ventilation allows pollutants generated from cooking to accumulate within the indoor environment, increasing exposure duration and intensity. The presence of ventilation systems such as exhaust fans, fume hoods, open kitchens, windows, and adequate air exchange can significantly reduce indoor particulate concentrations by enhancing pollutant dispersion and removal. Empirical evidence from a household-based study by Sun and Wallace (2021) demonstrated the effectiveness of ventilation in reducing PM 2.5 exposure during residential cooking. Their study reported that additional ventilation was used in only 27% of cooking activities. However, when people used ventilation through fume hoods or open kitchen designs, the decay rate of PM 2.5 increased by approximately a factor of two, leading to a substantial reduction in PM 2.5 exposure. These findings highlight that kitchen ventilation is an effective method for mitigating particulate emissions and exposure during household cooking.

3) ***Stove Type & Combustion Efficiency:*** Improvements in stove design and combustion efficiency can substantially reduce indoor particulate matter concentrations. Kumar et al. (2021) reported that the use of improved biomass cookstoves in middle-income countries resulted in a significant reduction in mean concentrations of carbon monoxide (CO) and PM 2.5 in cooking areas when compared with traditional biomass cookstoves. Supporting this, Bertrand et al. (2017) showed that modern stove technologies with higher combustion efficiency emit lower levels of primary particulate matter and exhibit reduced secondary aerosol formation potential than inefficient traditional stoves.

4) ***Exposure Time & Cooking duration:*** Tang et al. (2024) conducted a controlled experimental study in a kitchen to assess the impact of different cooking methods on indoor particulate matter and volatile organic compound emissions. Using chicken breast as a standardized food item, their study demonstrated that cooking temperature is a key factor of PM emissions, with pan-frying producing the highest particulate concentrations, followed by stir-frying and deep frying, while boiling and air-frying resulted in substantially lower emissions (Tang et al., 2024). These findings highlight that high-temperature cooking practices can substantially elevate indoor PM exposure, even when cleaner fuels are used.

5) Socio-economic & Education Status: Pangaribowo & Iskandar (2023) explored how socio-economic conditions affect household cooking energy choices in eastern Indonesia. A large household survey conducted in eastern Indonesia involving 2,547 households demonstrated a clear rural-urban divide in cooking energy choices. Despite 83% of households having access to electricity, less than 1% reported using electricity for cooking. There is strong reliance on solid biofuels observed in rural households predominantly engaged in farming activities (~65%). In contrast, urban households, which made up about 30% of the survey, were more likely to use cleaner cooking fuels highlighting the role of livelihood patterns in shaping energy choices. The influence of education on fuel choice has been further emphasized by Shukla and Dutta (2022), with higher education driving people to adopt cleaner cooking fuels, whereas lesser education were connected to continued reliance on traditional biomass fuels. This gap in education leads to differences in awareness, affordability, and understanding risks. Socio-economic inequalities, particularly in income stability, educational level, and urban-rural residence, play a very important role in determining cooking fuel choices and indoor particulate matter exposure (Shukla and Dutta, 2022).

Effect of Particulate Matter on health

1) ***Human Health:*** According to the World Health Organisation (WHO), globally around 2.1 billion people continue to rely on solid fuels such as wood, crop residues, dung, charcoal and kerosene, often burnt in open fires or inefficient stoves for household cooking. The incomplete combustion of these fuels generates high concentrations of fine particulate matter (PM 2.5) and other toxic pollutants within indoor environments. This leads to approximately 2.9 million premature deaths annually, primarily due to cardiovascular and respiratory diseases linked to chronic exposure to indoor particulate emissions (WHO, 2025). Table 3 shows the percentage of deaths in relation to diseases and indoor air pollution.

Table 3. Percentage contribution of major health outcomes among the 2.9 million premature deaths due to indoor air pollution.

S. No.	Type of disease	% of death due to indoor pollution
1.	Ischaemic Heart Disease	32%
2.	Stroke	23%
3.	Lower respiratory infections	21%
4.	Chronic Obstructive Pulmonary Disorder (COPD)	19%
5.	Lung cancer	6%

Source: WHO (2025)

These health impacts disproportionately affect women and children due to prolonged exposure during cooking activities, particularly in poor ventilated indoor environments. Sharma and Jain (2020) reported that women using solid biomass fuels in rural households are exposed to higher concentrations of PM 2.5, PM 1, and particle-bound polycyclic aromatic hydrocarbons (PAHs), which increases the lifetime risk of cancer and other chronic diseases among exposed population. Women working in enclosed kitchens experience significantly higher risks to cancer compared to those cooking in semi-enclosed or open kitchens settings (Sharma and Jain, 2020). Structural factors such as kitchen enclosure and ventilation determine the magnitude of health risks associated with indoor particulate exposure. Pathak et al. (2020), reported that exposure to indoor air pollution from solid

biomass fuels was associated with a 2.65 fold increased risk of chronic obstructive pulmonary disease (COPD) and a 2.89 fold higher risk of chronic bronchitis compared to non - biomass fuel users. Exposure to PM 2.5 generated from the indoor cooking activities, poses a substantial public health risk particularly among rural populations and women with prolonged cooking exposure.

2) ***Environmental Health:*** A global modelling study covering 170 countries estimated that household cooking with solid fuels contributed approximately 12% of ambient PM 2.5 concentrations worldwide in 2010, with higher contributions observed in South Asia and other low-income regions (Chafe et al., 2014). This highlights that emissions originating indoors can substantially influence outdoor air quality. Although the estimates are based on 2010 data, the study provides strong evidence of the role of household cooking emissions in shaping ambient particulate pollution, particularly in developing regions. Residential solid fuel combustion is also a major source of black carbon (BC), a climate- relevant component of fine particulate matter. A field-based study by Zhang et al. (2021), covering 163 burning experiments across different fuel-stove combinations, reported substantial BC emissions from incomplete combustion of biomass and coal used in household cooking. Their study highlighted that BC emissions strongly depend on fuel type and combustion conditions, confirming residential cooking as an important source of carbonaceous aerosol in the atmosphere. Beyond local and regional air quality impacts, black carbon also plays a critical role in climate change. Ramanathan and Carmichael (2008) reported that black carbon, a major component of soot produced from incomplete combustion of fossil fuels and biomass, is the dominant absorber of visible solar radiation in the atmosphere. Due to its strong light-absorbing properties, black carbon contributes significantly to atmospheric warming and is considered the second most important contributor to global warming after carbon dioxide. Emissions from residential solid fuel combustion therefore not only degrade air quality but also contribute to regional and global climate change.

Some Mitigation Strategies

1) ***Use of cleaner fuels:*** Transitioning from solid biofuels to cleaner cooking fuels such as LPG, electricity and biogas represents an effective strategy for reducing indoor particulate matter emissions. Studies consistently show that cleaner fuels produce substantially lower particulate emissions compared to traditional biomass-based cooking systems (Islam et al., 2021).

2) ***Improved Cookstoves:*** Adoption of improved biomass cookstoves can effectively reduce indoor PM 2.5 concentrations compared to traditional biomass stoves. Modern cookstove designs with higher combustion efficiency emit lower levels of primary particulate matter, thereby contributing to reduced household air pollution (Kumar et al., 2021; Bertrand et al., 2017).

3) ***Ventilation and Kitchen Design:*** Improved kitchen ventilation, including the use of range hoods and open kitchen designs, can significantly reduce PM 2.5 exposure during cooking activities by facilitating the dispersion and removal of cooking-related emissions (Sun & Wallace, 2021).

4) ***Awareness and Behavioural Change:*** Educating households about the health risks associated with indoor cooking and the benefits of cleaner fuels, improved cookstoves, and proper kitchen ventilation is essential for reducing indoor PM exposure. Awareness programs can be run in community, schools and colleges where children and young adults can help change household habits and encourage healthier cooking. While WHO (2025) focuses on policy measures and support for clean energy adoption, community-based awareness initiatives are a practical approach to support these efforts.

Policy Interventions: Role of PMUY

Government of India launched Pradhan Mantri Ujjwala Yojana (PMUY) by Ministry of

Table 4. Limitations observed in PMUY

S.No.	Aspect	PMUY Achievement	Observed Limitation
1	LPG Connections	~10.6 crore LPG connections	Decline in refill rates
2	Switching of Fuel	Initial reduction in tradition fuel use (~30% by 2018)	Traditional fuel usage continues due to high refill cost
3	Affordability	Free connection	High refill cost
4	Rural adoption	Increased access	Reversion to biomass

Source: Sahu (2024), Rajan & Singh (2020)

Petroleum and Natural Gas in 2016 to make cleaner cooking fuel like LPG available to rural and below poverty line (BPL) households. Before the introduction of PMUY, around 80% of rural households depended on traditional cooking fuels, which decreased to nearly 50% by 2018, reflecting a substantial decline following the scheme's implementation (Rajan and Singh, 2020). These trends indicate the effectiveness of government initiatives in reducing dependence on traditional cooking fuels. However, critical challenges remain, particularly the declining frequency of LPG cylinder refilling among beneficiaries. Survey-based evidence further highlights this concern, with a significant proportion of LPG users reporting refill costs as a major constraint to sustained LPG usage (Sahu et al., 2024). Table 4 shows the limitations observed in PMUY.

Rajan and Singh (2020) reported the three core benefits from this scheme. (a) This scheme aims to safeguard the health of women and children from the direct inhalation of the pollutants released from the traditional cooking fuels like coal, firewood, cow dung cakes and agricultural residues. (b) Increase in the manufacturing of gas stoves, cylinders and regulators helps in generation of employment opportunities. (c) This scheme could provide substantial economic benefits to Indian industry, amounting to approximately Rs 100,000 million over a three-year period.

Under Ujjwala 2.0, an additional allocation of 75 lakh LPG connections was approved for three financial years (FY 2023-24 to 2025-26), of which the target was achieved by July 2024, as reported on the official PMUY portal. Furthermore, the Government of India approved the release of an additional 25 lakh LPG connections, increasing the overall target under the scheme to 10.6 crore LPG connections. These measures reflect continued policy efforts to expand clean cooking fuel access and strengthen the adoption of LPG among rural and BPL households (Ministry of Petroleum and Natural Gas, n.d.).

Conclusion

Indoor cooking using solid biofuels remains a major source of PM emissions, with rural households disproportionately affected due to socio-economic and educational aspects. Factors such as fuel type, stove efficiency, cooking practices, and kitchen ventilation play a significant role in determining PM exposure. Human health impacts, including respiratory diseases and increased cancer risk, along with environmental consequences such as black carbon emissions, show the urgent need for effective mitigation strategies. This short review summarises that cleaner fuels, improved cookstoves, proper ventilation, behaviour change, and supportive government policies like PMUY can collectively reduce indoor air pollution from kitchens and protect public health. Future efforts should focus on integrating technology, awareness, and policy measures both in urban and rural households to ensure sustained adoption of cleaner cooking practices.

References

Abdullahi, K. L., Delgado-Saborit, J. M., & Harrison, R. M. (2013). Emissions and indoor concentrations of particulate matter and its specific chemical components from cooking: A review. *Atmospheric Environment, 71*, 260-294. https://doi.org/10.1016/j.atmosenv.2013.01.061

Bertrand, A., Stefenelli, G., Bruns, E. A., Pieber, S. M., Temime-Roussel, B., Slowik, J. G., ... & Marchand, N. (2017). Primary emissions and

secondary aerosol production potential from woodstoves for residential heating: Influence of the stove technology and combustion efficiency. *Atmospheric environment*, *169*, 65-79. https://doi.org/10.1016/j.atmosenv.2017.09.005

Chafe, Z. A., Brauer, M., Klimont, Z., Van Dingenen, R., Mehta, S., Rao, S., ... & Smith, K. R. (2014). Household cooking with solid fuels contributes to ambient PM2. 5 air pollution and the burden of disease. *Environmental health perspectives*, *122*(12), 1314. 10.1289/ehp.1206340

Islam, M. M., Wathore, R., Zerriffi, H., Marshall, J. D., Bailis, R., & Grieshop, A. P. (2021). In-use emissions from biomass and LPG stoves measured during a large, multi-year cookstove intervention study in rural India. *Science of The Total Environment*, *758*, 143698. https://doi.org/10.1016/j.scitotenv.2020.143698

Kumar, N., Phillip, E., Cooper, H., Davis, M., Langevin, J., Clifford, M., & Stanistreet, D. (2021). Do improved biomass cookstove interventions improve indoor air quality and blood pressure? A systematic review and meta-analysis. *Environmental Pollution*, *290*, 117997. https://doi.org/10.1016/j.envpol.2021.117997

Lachowicz, J. I., Milia, S., Jaremko, M., Oddone, E., Cannizzaro, E., Cirrincione, L., ... & Lecca, L. I. (2022). Cooking particulate matter: A systematic review on nanoparticle exposure in the indoor cooking environment. *Atmosphere*, *14*(1), 12. https://doi.org/10.3390/atmos14010012

Ministry of Petroleum and Natural Gas. (n.d.). Pradhan Mantri Ujjwala Yojana-About PMUY. https://www.pmuy.gov.in/about.html

Pangaribowo, E. H., & Iskandar, D. D. (2023). Exploring socio-economic determinants of energy choices for cooking: the case of eastern Indonesian households. *Environment, Development and Sustainability*, *25*(7), 7135-7148. https://doi.org/10.1007/s10668-022-02362-y

Pathak, U., Gupta, N. C., & Suri, J. C. (2020). Risk of COPD due to indoor air pollution from biomass cooking fuel: a systematic review and meta-analysis. *International journal of environmental health research*, *30*(1), 75-88. https://doi.org/10.1080/09603123.2019.1575951

Ramanathan, V., & Carmichael, G. (2008). Global and regional climate changes due to black carbon. *Nature geoscience*, *1*(4), 221-227. https://doi.org/10.1038/ngeo156

Ranjan, R., & Singh, S. (2020). Household cooking fuel patterns in rural India: pre-and post-Pradhan Mantri Ujjwala Yojana. *Indian Journal of Human Development*, *14*(3), 518-526. https://doi.org/10.1177/0973703020975045

Sahu, V., Tripathi, S. N., Sutaria, R., Dumka, N., Kotwal, A., Ghosh, K., & Singh, R. K. (2024). Assessment of a clean cooking fuel distribution scheme in rural households of India–Pradhan Mantri Ujjwala Yojana (PMUY). *Energy for Sustainable Development*, *81*, 101492. https://doi.org/10.1016/j.esd.2024.101492

Sharma, D., & Jain, S. (2020). Carcinogenic risk from exposure to PM2. 5 bound polycyclic aromatic hydrocarbons in rural settings. *Ecotoxicology and Environmental Safety*, *190*, 110135. https://doi.org/10.1016/j.ecoenv.2019.110135

Shukla, D., & Dutta, V. (2022). Indoor Air Quality Monitoring of Urban and Rural Households of a North Indian City During Cooking Hours. *Aerosol Science and Engineering*, 6(1), 86-98. https://doi.org/10.1007/s41810-021-00126-1

Sun, L., & Wallace, L. A. (2021). Residential cooking and use of kitchen ventilation: The impact on exposure. *Journal of the air & waste management association*, *71*(7), 830-843. https://doi.org/10.1080/10962247.2020.1823525

Tang, R., Sahu, R., Su, Y., Milsom, A., Mishra, A., Berkemeier, T., & Pfrang, C. (2024). Impact of cooking methods on indoor air quality: A comparative study of particulate matter (PM) and

volatile organic compound (VOC) emissions. *Indoor Air*, *2024*(1), 6355613. https://doi.org/10.1155/2024/6355613

Thangavel, P., Park, D., & Lee, Y. C. (2022). Recent insights into particulate matter (PM2.5)-mediated toxicity in humans: an overview. *International journal of environmental research and public health*, *19*(12), 7511. https://doi.org/10.3390/ijerph19127511

World Health Organisation. (2025). Household Air Pollution and Health https://www.who.int/news-room/fact-sheets/detail/household-air-pollution-and-health

Zhang, L., Luo, Z., Xiong, R., Liu, X., Li, Y., Du, W., ... & Tao, S. (2021). Mass absorption efficiency of black carbon from residential solid fuel combustion and its association with carbonaceous fractions. *Environmental Science & Technology*, *55*(15), 10662-10671. https://doi.org/10.1021/acs.est.1c02689



Health

Peer Reviewed

Zoonotic Diseases: When Animal Health becomes Human Health

Kaustubham Narayan Dixit

Introduction

Humans, animals, and the environment play a significant role in the emergence and transmission of different infectious diseases. Most of the infectious diseases affecting humans are of animal origin. The "Asia Pacific strategy for emerging diseases: 2010" report estimated that around 60% of the emerging human infections are zoonotic in nature and among these pathogens more than 70% originated from wildlife species. The newly emerged diseases in humans in recent decades were of animal origin and were directly associated with animal origin foods.

The term "Zoonoses" is derived from the Greek word "Zoon", which means animal, and "nosos", which means illness. According to the World Health Organization (WHO), any disease or infection that is naturally transmissible from vertebrate animals to humans or from humans to animals is classified as a zoonosis Among the human pathogens, about 61% are zoonotic in nature. (**Reference- National library of Medicine** https://pmc.ncbi.nlm.nih.gov/articles/PMC7563794/)

Zoonoses comprise a large percentage of all newly identified infectious diseases as well as many existing ones. Some diseases, such as HIV, begin as a zoonosis but later mutate into human-only strains. Other zoonoses can cause recurring disease outbreaks, such as Ebola virus disease and salmonellosis. Still others, such as the novel coronavirus that causes COVID-19, have the potential to cause global pandemics. (**Reference- World Health Organization (WHO)** https://www.who.int/news-room/fact-sheets/detail/zoonoses)

What are zoonotic diseases

Zoonosis may sound like an exotic word, but it describes a fairly common event. Zoonoses are diseases that can spread between animals and humans, and they are a prevalent part of the global public health landscape.

Scientists estimate that more than 60% of known infectious diseases in people can be spread from animals, and approximately 75% of new and emerging infectious diseases originate in animals. As human populations grow, wildlife habitats shrink, and people, pets, livestock, and wildlife interact more frequently, it has become more important in preventing these diseases.

The good news is that many zoonotic diseases are preventable, and animal medicines are at the heart of that prevention. For World Zoonosis Day on July 6, let's take a look at the relationship between animal health and human health through the lens of zoonoses. (**Reference- Animal Health Institute** https://ahi.org/recognizing-world-zoonoses-day-how-protecting-animal-health-protects-human-health/)

How do zoonotic diseases spread

Because of the close connection between people and animals, it's important to be aware of the common ways people can get infected with germs that can cause zoonotic diseases. These can include:

- **Direct contact:** Coming into contact with the saliva, blood, urine, mucous, feces,

BVSc&A.h. IIIrd Year, College of Veterinary Science and Animal Husbandry
Acharya Narendra Deva University of Agriculture and Technology, Kumarganj, Ayodhya
Email : kaustubham10@gmail.com

or other body fluids of an infected animal. Examples include petting or touching animals, and bites or scratches.

- **Indirect contact:** Coming into contact with areas where animals live and roam, or objects or surfaces that have been contaminated with germs. Examples include aquarium tank water, pet habitats, chicken coops, barns, plants, and soil, as well as pet food and water dishes.
- **Vector-borne:** Being bitten by a tick, or an insect like a mosquito or a flea.
- **Foodborne:** Eating or drinking something unsafe, such as unpasteurized (raw) milk, undercooked meat or eggs, or raw fruits and vegetables that are contaminated with feces from an infected animal. Contaminated food can cause illness in people and animals, including pets.
- **Waterborne:** Drinking or coming in contact with water that has been contaminated with feces from an infected animal. (**Reference-The U.S. Centres for Disease Control and Prevention (CDC)** https://www.cdc.gov/one-health/about/about-zoonotic-diseases.html)

Major zoonotic diseases of public health importance

Major Zoonotic Diseases, their etiological agents, hosts, and the major symptoms in humans. (**Table 1. Reference- National library of Medicine** https://pmc.ncbi.nlm.nih.gov/articles/PMC7563794/)

Role of veterinarians in zoonotic disease control

Veterinarians are not only doctors of animals; they are also important guardians of public health. They play a major role in disease surveillance, early diagnosis, vaccination, outbreak investigation, meat inspection, food safety, and public awareness.

Early recognition of disease in animals can provide a warning before infection spreads widely in the human population. Therefore, veterinary disease surveillance is an essential component of public health protection.

One health: One world, one future

The One Health approach recognizes that the health of humans, animals, and the

Disease	Etiology	Animal Host	Major Symptoms, System or Organs Involved
Anthrax	*Bacillus anthracis*	Cattle, horses, sheep, pigs, dogs, bison, elks, white - tailed deer, goats, and mink	Skin, respiratory organs, or GI tract
Tuberculosis	*Mycobacterium bovis, Mycobacterium caprae, Mycobacterium microti*	Cattle, sheep, swine, deer, wild boars, camels, and bison	Respiratory organs bone marrow
Brucellosis	*Brucella abortus Brucella melitensis, Brucella suis, Brucella canis,*	Cattle, goats, sheep, pigs, and dogs	Fever, usually high in the afternoon, back pain, joint pain, poor appetite, and weight loss
Glanders	*Burkholderia mallei*	Horses, donkeys, and mules	Fever, sweating, muscle aches, chest pain, muscle tightness, and headache
Rabies	*Rabies virus, Genus – Lyssavirus Family – Rhabdoviridae*	Cattle, horses, cats, dogs, bats, monkeys, wolves, skunks, rabbits, and coyotes	Nervous system



environment is closely connected. Effective control of zoonotic diseases requires cooperation among veterinarians, medical professionals, microbiologists, environmental scientists, and public health authorities.

Climate change, deforestation, wildlife interaction, urbanization, and increased movement of animals and people may influence the emergence and spread of zoonotic diseases. A coordinated One Health strategy is therefore essential for preventing future outbreaks. (**Reference-World Health Organization (WHO)** https://www.who.int/news-room/fact-sheets/detail/zoonoses)

Prevention and control

Zoonotic diseases can be controlled through regular vaccination of animals, proper hygiene and sanitation, safe handling of animals, pasteurization of milk, proper cooking of meat and eggs, control of vectors, responsible disposal of animal waste and carcasses, and continuous disease surveillance.

Public awareness is equally important. Educating livestock owners and communities about disease transmission and prevention can significantly reduce the risk of zoonotic infections.

Conclusion

Zoonotic diseases are more than animal diseases; they are a shared challenge for animals, humans, and the environment. Prevention begins with early detection, scientific surveillance, responsible animal management, and cooperation between veterinary and human health professionals.

Protecting animal health means protecting human health, and protecting both means protecting our shared future.

Reference

1. National library of Medicine https://pmc.ncbi.nlm.nih.gov/articles/PMC7563794/
2. World Health Organization (WHO) https://www.who.int/ news-room/fact-sheets/detail/zoonoses
3. Animal Health Institute https://ahi.org/recognizing-world-zoonoses-day-how-protecting-animal-health-protects-human-health/
4. The U.S. Centres for Disease Control and Prevention (CDC) https://www.cdc.gov/ one-health/about/about-zoonotic-diseases.html

Health

آب آلودگی اور حفاظتی تدابیر

معراج الدین (MERAJ UDDIN)

پانی اللہ تعالیٰ کی ایک عظیم نعمت ہے اور زمین پر زندگی کی بنیاد ہے۔ انسان، جانور، پودے اور دیگر تمام جاندار پانی کے بغیر زندہ نہیں رہ سکتے۔ یہی وجہ ہے کہ پانی کو زندگی کا سرچشمہ کہا جاتا ہے۔

گزشتہ دنوں میری نظر سے یوٹیوب پر ایک ویڈیو گزری، جس میں دکھایا گیا تھا کہ سال 2050 میں لوگ پانی کو چھپا چھپا کر لاکر میں محفوظ رکھیں گے اور چور، ڈاکو پیسے اور سونے کو چھوڑ کر پانی کی چوری کریں گے۔

دیکھنے میں یہ ویڈیو کافی مضحکہ خیز لگی، مگر اگر اسی رفتار سے ہم پانی کا بے دریغ استعمال کرتے رہے تو وہ دن دور نہیں جب ہمیں ایسے حالات کا سامنا کرنا پڑ سکتا ہے۔

زیر زمین پانی کے ذخائر کا بحران:

موسمیاتی تبدیلیوں کے نتیجے میں عالمی سطح پر درجہ حرارت میں اضافہ ہو رہا ہے۔ اس کا براہ راست اثر زیر زمین پانی کے ذخائر پر پڑ رہا ہے، کیونکہ درجہ حرارت میں اضافے کے ساتھ بارش کے نظام میں بھی غیر معمولی تبدیلیاں آ رہی ہیں۔

بعض علاقوں میں خشک سالی کے دورانیے طویل ہو گئے ہیں، جبکہ بعض مقامات پر غیر متوقع سیلاب نے زیر زمین آبی ذخائر کے قدرتی توازن کو متاثر کیا ہے۔

موسمیاتی تبدیلیوں اور آبادی کے بڑھنے کے اثرات:

سائنسدانوں کے مطابق اگر پانی کے موجودہ استعمال کا یہی رجحان جاری رہا تو آنے والے 25 سالوں میں کئی ممالک کو شدید پانی کی قلت کا سامنا کرنا پڑے گا۔ خاص طور پر جنوبی ایشیا، مشرق وسطیٰ اور شمالی افریقہ کے علاقوں میں زیر زمین پانی کی سطح خطرناک حد تک نیچے جا چکی ہے۔

زرعی پیداوار میں کمی، شہری علاقوں میں پانی کی فراہمی کا بحران اور پینے کے صاف پانی کی عدم دستیابی جیسے مسائل پہلے ہی کئی ممالک میں محسوس کیے جا رہے ہیں۔

موسمیاتی تبدیلیوں کے نتیجے میں عالمی سطح پر حدت میں اضافہ ہو رہا ہے۔ اس کا براہ راست اثر زیر زمین پانی کے

278/43(49), Khursheed Villa, Tayalvihar Colony, Gate No 2, Aishbagh Road, Lucknow-226004
Email : 1977merajuddin@gmail.com

ذخائر پر پڑ رہا ہے، کیونکہ درجہ حرارت میں اضافہ اور بارش کے نظام میں تبدیلیاں آبی ذخائر کو متاثر کر رہی ہیں۔

بعض علاقوں میں خشک سالی کے دورانیے طویل ہو گئے ہیں، جبکہ بعض مقامات پر غیر متوقع سیلاب نے زیر زمین آبی ذخائر کے قدرتی توازن کو بگاڑ دیا ہے۔

سائنسدانوں کے مطابق اگر پانی کے موجودہ استعمال کا یہی رجحان جاری رہا تو آنے والے 25 سالوں میں کئی ممالک کو شدید پانی کی قلت کا سامنا کرنا پڑے گا۔ خاص طور پر جنوبی ایشیا، مشرق وسطیٰ اور شمالی افریقہ کے علاقوں میں زیر زمین پانی کی سطح خطرناک حد تک نیچے جا چکی ہے۔

زرعی پیداوار میں کمی، شہری پانی کی فراہمی کا بحران اور پینے کے صاف پانی کی عدم دستیابی جیسے مسائل پہلے ہی کئی ممالک میں محسوس کیے جا رہے ہیں۔

2003 اور 2013 کے درمیان زمین کے پانی کے 37 بڑے زیر زمین ذخائر کا مشاہدہ کیا گیا۔ ان میں سے 8 ذخائر کے حوالے سے سائنسدان اس نتیجے پر پہنچے کہ ان پر حد سے زیادہ دباؤ ہے۔ دوسرے لفظوں میں ان ذخائر سے پانی تیزی سے نکالا جا رہا ہے اور قدرتی طور پر ان کے دوبارہ بھرنے کا کوئی مؤثر ذریعہ موجود نہیں ہے۔

پانچ دیگر آبی ذخائر کو انتہائی زیادہ دباؤ کا شکار قرار دیا گیا۔ سائنسدانوں نے خبردار کیا ہے کہ موسمیاتی تبدیلیوں اور بڑھتی ہوئی آبادی کی وجہ سے زیر زمین آبی ذخائر کی حالت مزید خراب ہو سکتی ہے۔ سب سے زیادہ دباؤ کا شکار زیر زمین آبی ذخائر دنیا کے خشک ترین علاقوں میں موجود ہیں، جہاں ان ذخائر کے دوبارہ بھرنے کے لیے کوئی قدرتی ذریعہ موجود نہیں ہے۔

ماہرین کے مطابق دنیا میں تیزی سے بڑھتی ہوئی آبادی اور شہری علاقوں میں وسعت پانی کے بحران کی بنیادی وجوہات ہیں۔ اس کے ساتھ ماحولیاتی تبدیلیاں، پانی کے ناقص انتظامات، سیاسی عزم کی کمی اور ہماری لاپرواہیاں بھی اس مسئلے کو مزید سنگین بنا رہی ہیں۔

پانی کے تحفظ کے طریقے: پانی زندگی کی بنیادی ضرورت ہے، اس لیے اس کا تحفظ ہم سب کی ذمہ داری ہے۔ بڑھتی ہوئی آبادی، آلودگی اور پانی کے بے جا استعمال کی وجہ سے دنیا میں پانی کی قلت میں اضافہ ہو رہا ہے۔

موسمیاتی تبدیلیوں کے نتیجے میں عالمی سطح پر حدت میں اضافہ ہو رہا ہے، جس کا براہ راست اثر زیر زمین پانی

کے ذخائر پر پڑ رہا ہے۔ 2003 اور 2013 کے درمیان زمین کے 37 بڑے زیر زمین ذخائر کا مشاہدہ کیا گیا، جن میں سے 8 پر حد سے زیادہ دباؤ پایا گیا۔

پانی کے تحفظ کے لیے درج ذیل طریقے اختیار کیے جا سکتے ہیں:

1۔ پانی کا ضیاع روکیں: نل استعمال کے بعد فوراً بند کریں۔

2۔ بارش کے پانی کو محفوظ کریں: اسے ذخیرہ کر کے گھریلو اور زرعی استعمال میں لایا جا سکتا ہے۔

3۔ لیک ہونے والے نل اور پائپ درست کریں: رسنے والے نل بڑی مقدار میں پانی ضائع کرتے ہیں۔

4۔ زرعی شعبے میں جدید آبپاشی اختیار کریں: ڈرپ اریگیشن اور اسپرنکلر نظام پانی کی بچت میں مددگار ثابت ہوتے ہیں۔

5۔ درخت لگائیں: زیادہ درخت ماحول کو بہتر بناتے ہیں اور بارش کے نظام میں معاون ثابت ہوتے ہیں۔

6۔ آبی ذخائر کو آلودگی سے بچائیں: دریاؤں اور دیگر آبی ذرائع میں کچرا نہ پھینکیں۔

7۔ عوامی آگاہی اور تعلیمی مہم چلائیں: اسکولوں اور میڈیا کے ذریعے پانی کے تحفظ کے بارے میں شعور پیدا کیا جائے۔

8۔ پالیسی سازی اور قانون سازی: پانی کے غیر ضروری استخراج پر پابندی اور مؤثر قوانین کا نفاذ ضروری ہے۔

9۔ پانی کو دوبارہ قابل استعمال بنائیں: استعمال شدہ پانی کو صاف کر کے دوبارہ استعمال میں لایا جا سکتا ہے۔

10۔ عالمی تعاون: موسمیاتی تبدیلیوں سے نمٹنے کے لیے عالمی سطح پر مشترکہ اقدامات ضروری ہیں۔

نتیجہ

بدقسمتی سے آج کے دور میں پانی کی قلت ایک بڑا مسئلہ بنتی جا رہی ہے۔ اس کی ایک بڑی وجہ پانی کا ضیاع اور آلودگی ہے۔

ہمیں چاہیے کہ پانی کو ضائع نہ کریں اور اسے آلودہ ہونے سے بچائیں۔ بارش کے پانی کو محفوظ کرنا اور پانی کا محتاط استعمال وقت کی اہم ضرورت ہے۔ آخر میں یہ کہنا ہے کہ پانی زندگی ہے، اور اس کی حفاظت ہم سب کی ذمہ داری ہے۔

ग्राम अकटहिया में शिक्षा और जागरूकता की अनूठी पहल: 'कहार लाइब्रेरी', बाराबंकी



ग्रामीण क्षेत्र में शिक्षा और सामाजिक चेतना को बढ़ावा देने के उद्देश्य से प्रोफेसर एच. एस. श्रीवास्तव फाउंडेशन फॉर साइंस एंड सोसाइटी (PHSS Foundation), लखनऊ द्वारा बाराबंकी के ग्राम अकटहिया में 'कहार लाइब्रेरी' की दो शाखाओं का सफल संचालन किया जा रहा है। वर्ष 2024 से शुरू हुई यह पहल आज गांव के हर वर्ग के लिए ज्ञान का मजबूत माध्यम बन चुकी है।

इन दोनों पुस्तकालयों को ग्रामीणों की प्राथमिकताओं के अनुसार दो भागों में व्यवस्थित किया गया है:

- छात्रों व युवाओं के लिए: पहले पुस्तकालय में बच्चों और युवाओं की मांग के अनुसार NCERT की पाठ्यपुस्तकें और विभिन्न प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी से जुड़ी महत्वपूर्ण पुस्तकें उपलब्ध कराई जाती हैं, जिससे उन्हें गांव में ही बेहतर अध्ययन के अवसर मिल रहे हैं।
- बुजुर्गों व किसानों के लिए: दूसरे पुस्तकालय में उन्नत खेती, फसल उत्पादन तकनीक, जैविक कृषि और समाज से जुड़े उपयोगी साहित्य उपलब्ध कराए जा रहे हैं, जिससे किसानों को व्यावहारिक मार्गदर्शन मिल रहा है।



PHSS Foundation, लखनऊ का यह निरंतर प्रयास रहेगा कि आगे भी विद्यार्थियों और ग्रामीणों की आवश्यकता अनुसार जरूरी पुस्तकें उपलब्ध कराई जाती रहें और 'कहार लाइब्रेरी' का संचालन और भी बेहतर ढंग से जारी रहे।

PROF. H. S. SRIVASTVA FOUNDATION FOR SCIENCE & SOCIETY

Office No. 04, 1st Floor, Eldeco Xpress Plaza,
Uttrathia Raebareli Road, Lucknow
Website : : www.phssfoundation.org Email:phssoffice@gmail.com

Professor H. S. Srivastava Foundation for Science and Society is a national academic, non-profit voluntary organization registered under the society Act 1860, in Lucknow.

A) CENTRE FOR SUSTAINABLE AGRICULTURE AND ENVIRONMENT-

- A Research and Development Centre of the Foundation,**'Centre for Sustainable Agriculture and Environment'** is working for the basic and translational research in these fields, Science Communication, Development of women and youth leadership and poverty elimination in the rural and peri-urban societies.
- The financial support is earned through the royalty, donation and sponsorship

B) Publication of International Research Journals-

- The Foundation is publishing a monthly research journal Physiology and Molecular Biology of Plants (PMBP; Clarivate JCR Impact Factor 3.3) in collaboration with Springer Nature from 2002 which was started in 1995 by another society.

C) Conferences, Seminar and Workshops-

- The Foundation is organises annual national/International conferences and periodical workshop, seminar and training programmes for scientific interaction and science communication regularly.
- An Annual National Rural Science Congress has been started from 2022 to explore the issues and challenges of sustainable rural development in India.

D) PHSS Foundation Awards-

- Five biennials' national awards are conferred to the distinct achievers in the different fields by the Foundation from 2012.

E) Popular Science Magazine-

- A quarterly Multilingual People Science Magazine Kahaar (www.kahaar.in) is published from 2014 to communicate science in general and concepts and practices of sustainable agriculture and environment in particular for college and school students and rural youth.

We invite, you all the like-minded people across the age, gender, geography, religion, and profession to join with us, collaborate and light the lamp for a better tomorrow.







